ज्ञानपीठ-लोकोदय ग्रंथमाला, हिन्दी-ग्रंथांक—३०

खेल-खिलौने

राजेन्द्र यादव

●

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

प्रथम संस्करण
१९५४
मूल्य दो रुपया

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस,
इलाहाबाद

समर्पण

जिनके लिये
और जिन्हें आधार बना कर ये कहानियाँ लिखी गयी हैं,
वास्तवमें भेंट तो उन्हें ही देना चाहता था,
लेकिन मेरा दुर्भाग्य,
वे सभी अभी तक जीवित हैं,
और मुझे अपना भविष्य विशेष अन्धकारमय नहीं दिखाई देता
इसलिये तबतक,

राजेन्द्र शर्मा को ही

बात सिर्फ़ इतनी है कि

ये सभी कहानियाँ एक ही समय नहीं लिखी गई—कहीं-कहीं इनका अन्तराल लम्बा है। इन कहानियोंका आधार वह भावना या 'बात' है, जो कभी किसी मूडमें मुझे छू गई है। इसलिए हो सकता है पाठकोंको इनमें 'दृष्टि' तो मिले, कोई 'कोण' न मिल पाये। यों मैं स्वीकार करता हूँ कि इन दोनोंको अलग नहीं रखा जा सकता, जहाँ ये अलग हैं, वहाँ कहीं न कहीं कमजोरी है। मै विश्वास दिलाता हूँ कि अपनी नई कहानियोंमें मैं 'दृष्टि' और 'कोण' दोनों को मिलानेमें प्रयत्नशील हूँ। फिर भी ऐसा नहीं है कि अब भी वे इससे नितान्त अछूती हों। इस दृष्टिसे 'खेल-खिलौने'को 'देवताओं' की मूर्तियोंसे पहले आना चाहिए था।

कहानियोंकी कलाके क्षेत्रमें यशपाल और अज्ञेयको मैंने सफल माना है। प्रोत्साहन और प्रेरणा देने वालोंमें स्वर्गीय श्री आर० सहगल, श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, श्री स० ही० वात्स्यायन और 'नई चेतना' के उत्साही साथी प्रमुख रहे हैं।

कृतज्ञ मैं सबसे अधिक अपने उन पाठकों का हूँ, जो अपने स्नेह-पूर्ण सुझावों और बढ़ावोंसे मुझे सदैव 'सधने' की शिक्षा देते रहे हैं।

यों कहानियों पर विभिन्न पत्रों, सम्पादकोंकी टिप्पणियाँ, पाठकोंकी पसन्द किसका दिमाग़ नहीं चढ़ा देतीं और इस दृष्टिसे खेलखिलौने कहानी न सिर्फ़ इन कहानियोंमें शायद हिन्दीकी पिछले तीन वर्षोंकी कहानियोंमें सबसे आगे रही है, लेकिन नत मैं उस अज्ञात महिलाके प्रति हूँ, जिसने मेरा दम्भ तोड़ा और मैंने समझा कि यह कहानी जहाँ ख़त्म होती है, उसका असली प्रारम्भ वहीं से है, क्योंकि जीवन इतना सस्ता और सुस्त नहीं है।

और अपने उन स्नेही परिचितोंको मैं क्या कहूँ जो सब कहीं अपने आपको पहचान लेते हैं, शायद इसका कारण यही है कि वे मुझे बहुत अधिक प्रिय हैं।

राजेन्द्र यादव

विषय-सूची

मेरा तन-मन तुम्हारा है

लीलाने सिर झुकाकर कहा--"सुधाकर, तुम ऐसी परायेपनकी-सी बातें क्यों करते हो, मेरा तन-मन सभी कुछ तो तुम्हारा है।"

सुधाकर चुप हो गया। उसने लीलाका हाथ बड़ी कोमलतासे चूम लिया। चाँदनीका अबीर उड़ रहा था और चाँद अपने सौन्दर्यमें बेहोश था।

लेकिन लीलाके पिताने लीलाके विवाहकी बातें कहीं और चला दी थीं जो काफ़ी तेज़ी और निश्चयात्मकतासे चल रही थीं।

लीलाकी गोदमें लेटकर सुधाकरने कहा--"लीला, यह सब क्या हो रहा है? मुझे तो लगता है जैसे हम और तुम सदाके लिए एक दूसरेसे अपरिचित बना दिये जायँगे। आओ कहीं चले चलें।"

मादकतासे उसके बालोंमें उँगलियाँ फिराते हुए लीला बोली--"नहीं, नहीं सुधाकर, भगवान् सभी कुछ ठीक करेंगे। मैं तो सदैव ही तुम्हारी हूँ। कहीं चलनेमें बड़ी दिक़्क़तें हैं--मुसीबतें हैं। और ईश्वर न करे, यदि मेरा तन किसी दूसरेका हो जाय तो मन तो हमेशा-हमेशाके लिए, तुम्हारा है। उसे संसारकी कोई बाधा, ताकत नहीं छीन सकती।" लीला अन्यमनस्क-सी कहीं और देख रही थी--उसकी खुली आँखोंसे दो जलते आँसू सुधाकरके सलवटदार माथेपर गिर पड़े। उसने उन्हें पोंछा नहीं।

और लीलाका विवाह दूसरी जगह हो गया। वह सोने-चाँदीसे लद गई। सुधाकरसे लिपटकर वह खूब रोई। उसने उसे विश्वास दिलाया कि उसकी आतमा, उसका मन, हमेशा-हमेशाके लिए सुधा-करका है।

पहिले वर्ष जब वे मिले तो सुधाकरकी आँखोंमें आँसू भर आये। बनारसी साड़ीमें केसरके रंगके साथ सोनेके गहने चमक रहे थे। अपनी विवशतापर उसका दिल तड़प उठा। उसने कहा—"लीला, कितनी याद मुझे तुम्हारी आती रही है, कह नहीं सकता।"

"हाँ, सुधाकर, याद मुझे भी तुम्हारी आई है।" एक जँभाई लेकर मुँहके सामने हाथ करते हुए लीलाने जवाब दिया। वह अपनी रिस्टवाच-की चाभी घुमाती रही—"कहो, तुम तो अच्छे रहे, तुम्हारे लिए फल-वल लाऊँ ?"

"नहीं" खोये स्वरमें उत्तर आया।

दूसरे वर्ष जब वे मिले तो सुधाकरने कहा—'लीला, जब मुझे मालूम हुआ कि तुम यहाँ हो तो अपना न जाने कितना हर्ज करके मैं यहाँ आया हूँ। एक हज़ार मील पार करके।"

बिना किसी प्रकारका भाव दिखाये ही लीलाने कहा—"ज़रूरत क्या थी सुधाकर! वहाँ मौसम कैसा है ?"

सुधाकर आशा करता था वह कहेगी—मनसे तो मै हमेशा ही तुम्हारे पास हूं—लेकिन उसने नही कहा।

"बड़ी-बड़ी तुम्हारी याद आई"...और एक बार उसकी इच्छा हुई, लीलाकी गोदीमें लेट जाये।

लेकिन लीला शर्मसे लाल हो गई वह एकदम घबराकर उठने लगी। सुधाकरने प्रश्न-दृष्टिसे उसे देखा—"कहाँ ?"

"तुम्हारे लिए पान ले आऊँ न ?"

"नहीं-नहीं लीला", सुधाकरने उसके हाथ पकड़कर स्नेहसे बैठाना चाहा कि इसकी ज़रूरत नहीं है।

"न...न...छोड़ो सुधाकर, कोई देख लेगा—।" अत्यन्त व्यस्तता दिखाते हुए लीलाने हाथ झटक लिया और वह चली गई।

मर्माहत-सा सुधाकर देखता रहा कि उसके वे सब वायदे कहाँ गये

कि मेरी आत्मा सदैव ही तुम्हारी रहेगी। और वह मन कहाँ है? इस तनके अथाह सागरमें मन खो गया है--डूब गया है। तनका सागर--जिसमें वैभवने एक तूफ़ान ला दिया है।

बाहर आते हुए उसने सोचा--तनने मनको निगल लिया है, आत्मसात् कर लिया है। केवल तनकी दीवारें सामने हैं जो छूनेपर बिजलीके करेंटकी तरह झटका देती हैं।

खेल-खिलौने

बडे आदरके साथ जैसे ही हमने दोनों हाथ माथेतक उठाकर नमस्कार किया, कार घुर्रघुँ करके हमारे बीचसे चल दी। एक ओर मैं खड़ा था, दूसरी ओर बाबूजी। दरवाज़ेपर झुण्डका झुण्ड बनाये वे लोग झाँकती हुई कारकी ओर हाथ जोड़ रही थीं। जब वे उधर कारकी ओर देखतीं तो बड़ी शिष्टता और नम्रतासे मुस्कुरा देतीं, जैसे वे इसीकी अभ्यस्त हैं, और जब ज़रा पीछे हटकर दरवाज़ेसे बाहर निकल आते किसी बच्चेको झिड़कतीं या क्रुद्ध होकर पीछे धकेलतीं तो उनकी भवें लपकती तलवारकी तरह माथेपर तन जाती। कारके स्टार्ट होते ही इतनी देरसे लगाये हुए शिष्टताके सारे अनुशासन टूट चुके थे और उन कारवालियोंकी मुखर आलोचनाएँ प्रारम्भ हो गई थीं--जिनका विषय था, चश्मेकी कमानी, पाउडर, दाँत, मुँह, बाल काढ़नेका ढंग, ब्लाउज़की डिज़ाइन और कट, साड़ीकी किनारी इत्यादि। नये आदमियोंके सामने ज़बर्दस्ती चुप किये गये और स्वतः डरे हुए बच्चे अब और ज़ोरसे चीज़ें माँगने लगे थे।

पृथ्वीपर पड़े हुए कारके निशानोंको देखता हुआ मैं लौटने हीको था कि मेरी निगाह सामनेसे आते हुए सुधीन्द्र भाई पर पड़ गई। शेरवानी, ढीला पाजामा, सैंडल और हाथमें अटैची लिये वह धूलमें सने चले आ रहे थे। मैं पूछनेको ही था "लौट आये ?" तभी स्वयं उन्होंने ही पूछ लिया--"कहो भाई क्या हल्ला है ? आप सब लोग क्यों यहाँ जमा हो रहे हैं।" एक विचित्र प्रकारका बुझा हुआ उनका स्वर था।

इससे पहिले कि मैं जवाब दूँ छोटी वीराने उछल-उछैल कर बता दिया--"सुधीन्द्र भाई साहब, आज नीरजा जीजी को देखने आयी थी

उनकी सास" और बच्चोंने खूब उछल-कूद कर एक साथ ही इस बातको दुहराया—"सास देखने आयी थी।"

फिर भी मैंने पास जाकर उनके कन्धेपर हाथ रखकर गम्भीरतासे बताया "नीरजाकी सुसरालसे कुछ स्त्रियाँ देखने आई थीं उसे, अभी तो गई हैं आपके आगे-आगे। हम लोग उन्हें विदा करने आये थे। आप सीधे स्टेशनसे ही आ रहे हैं न, लाइये अटैची मुझे दीजिये। नलिनीके घर सब ठीक-ठाक है न, तार देकर क्यों बुलाया था ?" अटैची मैंने उनके हाथसे ले ली, लेकिन मुझे लगा सुधीन्द्र भाईके चेहरे पर उत्साह नहीं था।

"हाँ तो नीरजाको देखनेको आये थे, फिर क्या हुआ ?" उन्होंने सिर झुकाकर ओठोंकी पपड़ीको उँगलियोंसे टटोलते हुए पूछा। हम लोग एक-एक क़दम भीतर चल रहे थे। बरामदा पार करके अब हम ड्राइंग-रूममें आ गये थे। बाबूजी अपने कमरेमें चले गये, जीजी, माताजी, भाभी, बुआ, चाची और छोटे-छोटे बच्चे सब हमसे पहिले ड्राइंग-रूममें आ चुके थे। सोफे और कोचपर अब वे लोग बैठ गई थीं। बीचकी मेज़पर उन देखनेवालोंके लिए लाये गये नाश्तेके बर्तन—कप, प्लेटें, चम्मच, चायदानी, गिलास, ट्रे इत्यादि रखे थे। किसी प्लेटमें बाक़ी बची दाल-मोठ पड़ी थी, किसीमें बंगाली मिठाईको काटता चम्मच। प्यालोंके तलोंमें थोड़ी-थोड़ी चाय बच गई थी। एक बड़ी प्लेटमें केलोंके छिलके, लुकाट और सेबके बीज, सन्तरेकी जाली और टोस्टमें लगानेके मक्खनकी टिकियाके काग़ज़ पड़े थे। मेज़पर चारख़ानेका मेज़पोश था।

"आओ भाई सुधीन्द्र, आओ।" सभीने हमें देखकर उत्साहसे बुलाया—तुम कब आये ? अभी आ रहे हो ? अरे, ज़रा देर पहिले आते।" अपने पास बैठनेकी जगह छोड़कर बुआने आपसमें बड़े उत्साहसे होती हुई बातोंका सिलसिला एकदम तोड़कर कहा। मैंने अटैची कोनेमें रख दी और बीचकी मेज़ एक ओर दीवालके सहारे हटाकर उस जगह एक आरामकुर्सी खींच लाया। सुधीन्द्र भाई उसीपर बैठ गये, मैं हत्थेपर

बैठ गया। बच्चे इधर-उधर घेरकर खड़े उस बचे हुए नाश्ते—चाय, फल इत्यादिकी प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछने धीरे-धीरे अपनी माँओंसे माँगना भी शुरू कर दिया था। बुआने जैसे बिलकुल नई बात हो, सुधीन्द्र भाईको सूचना दी—"नीरजाको देखने आये थे उसकी सुसरालसे, जहाँ रिश्ता हो रहा है न।"

तभी जीजीने एकदम कहा—"मै यहाँ आई कमरेमें कंघा लेने, देखा एक चश्मेवाली औरत खड़ी है। मै एकदम भवक रह गई—हाय राम है कौन यह, यों घुस आई है। उसके पीछे एक और लड़की-सी, फिर एक तेरह-चौदह सालका लड़का। पूछा, तो उसने बताया—हम लोग बनारससे आये हैं, मेरी समझमें नहीं आया, क्या करूँ। सबसे पहिले जाकर बाबूजी-को जगाया, वे झट तहमद बाँधे ही दौड़े। और जब भाभीको बताया, तो चूल्हेमें रोटी डालकर वह भागी कि बस! और भैया, बुआने तो तमाशा ही कर दिया, कभी इस धोतीको उठायें कभी उस ब्लाउज़को पहन, 'मैं क्या पहनूँ मैं क्या पहनूँ' कहती-कहती सारे घरमें ऐसी नाची-नाची फिरी हैं कि देखते ही हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते।"

"और अपनी नहीं बतायेंगी।" भाभीने हाथ बढ़ाकर कहा—'धोबी मरा कपड़ा नही दे गया, कहाँ तो परसों ही दे जानेको रो रहा था। लो, कंघा भी उमी कमरेमें छोड़ आई—आग लगे ऐसे घरमें। कोई चीज़ ठीक जगहपर रखी हुई पाती ही नहीं। बिन्दीकी शीशी अभी यहाँ रखी थी, न जाने कौन निगल गया। अपने कामकी चीज़ हो या न हो बच्चोंको उससे खेलना। नाकमें दम है।' और भी बीस बातें। रोई पड़ती थीं बीबीजी।—अरे हाँ हाँ री! क्या है, क्यों जान खाये जा रही है।"

और जीजीकी बात कहती-कहती भाभीने वीराके दोनों हाथ झटक दिये, क्योंकि बिना उनकी बातोंमें रुचि लिये हुए, वह बार-बार उनका मुँह अपने दोनों हाथोंसे अपनी ओर करके ठिनकती हुई दुहराये जा रही

थी—"भाभी केला दिलवाओ एक, बेबीने बंगाली मिठाई खा ली, हम भी लेंगे।"

झिड़की खाकर वह भी अब शेष तीनों बच्चोंके पास चली गई। वे सब नाश्तेकी उसी मेज़के चारों ओर घिरे, बाक़ी बची चीज़ोंका हिस्सा बाँट कर रहे थे—"तूने अपने 'कप'में ज़्यादा चाय कर ली, इतनी ही हमें भी दे। आप तो दाल-मोठकी तश्तरी लेकर अलग बैठ गये, कल हमारे पास पटाखे माँगने कैसे आ गये थे, तब तो 'अमें बी दो पताके' ! अम्मा देखो इस उमाने चायदानी फोड़ी।"

"अच्छा हल्ला मत मचाओ।" माताजीने उन्हें झिड़ककर कहा। उनके आते ही सारे घरमें ऐसी भगदड़ मची कि बस क्या बतायें, कोई इधर भाग रहा है, कोई उधर। हमारे तो भाई, बच्चे भी ग़ज़बके हैं, घर झाड़ो, साफ़ करो, एक मिनट बाद फिर वही घूरा-सा करके रख दें। लोगोंके यहाँ न जाने कैसे सजे-सजाये घर रहते हैं। और बैठक तो ये समझो, इस कैलाशने (मैंने) झाड़-पोंछ दी थी, कबाड़खाने-सी पड़ी थी, कहाँ बैठाते, कहाँ उठाते।

मुझे इस समय अपनी बहादुरी जतानी बड़ी आवश्यक लगी, फ़ौरन ही बोला—"बैठक मैंने दोपहरको ही झाड़-पोंछ दी थी। तस्वीरोंके चौखटे साफ़ कर दिये थे, मैंटलपीसपर ये सारे खिलौने ठीक-ठाक रख दिये नहीं तो आनन्द आता।" और मैंने सब खिलौनों-तस्वीरों इत्यादि पर दृष्टिपात किया।

"जीजी, बच्चा।" इस बार जीजीका बच्चा नाश्तेकी चीज़ें ख़त्म हो जानेपर फिर जीजीके पास आ गया था और खिलौनोंका नाम सुनकर मैंटलपीसपर रखे चीनीके भगवान् बुद्धकी ओर उँगली उठाकर कह रहा था।

"हाँ बच्चा, जाओ, तुम सब लोग जाओ—बाहर खेलो, देखो सुधीन्द्र भइया आये हैं—बातें करने दो। जाओ, बेबी, विभास, जाओ सब

बाहर जाओ, इसे भी ले जाओ।" और जीजी स्वयं उठकर सब बच्चोंको बाहर कर आईं।

"हमने तो समझा था, नीराकी सास कोई बुड्ढी-सी होगी, पुराने खयालोंकी; पर वह तो ख़ूब जवान है। फ़ैशनमें रहती है। उल्टे पल्लेकी धोती, चश्मा और लड़केकी भाभी तो फ़ैशनके मारे मरी जा रही थी, देखा नहीं लिपस्टिक कैसी गाढ़ी-गाढ़ी पोत रखी थी, बार-बार पर्स खोलकर रूमाल निकालती, कभी तहकी तह होठोंपर लगाती, कभी माथे-गालोंपर—पाउडर तो बोरी भर लगाया था—मुझे तो बड़ी भद्दी लगी। लड़का सीधा था। छोटा भाई है।" जीजीने बैठते ही बताया।

"और देखा, कितना छोटा है, मैट्रिक कर चुका है, और एक ये हैं कैलाश, ऊँटका ऊँट अभी बी० ए०में ही पढ़ता है।" माताजीने कहा।

मैं और सुधीन्द्र भाई चुपचाप बैठे थे। यहाँ कोई किसीकी सुनना ही नहीं चाहता था। एक ही बातको अपने-अपने शब्दोंमें कहनेको सभी उत्सुक। समझमें नहीं आता था किसकी बातको सुना जाय। इन बातोंके समाप्त होनेकी कोई आशा ही नहीं लग रही थी। तभी अचानक बातोंके प्रवाहको पलटनेके लिए मैंने कहा—"आप लोग तो यहाँ बैठी बातें बना रही हैं, नीरजा कहाँ है, उसे भी बुला लीजिए न। सुधीन्द्र भाई आये हैं, न चाय न पानी।"

"वह तो भीतरवाले कमरेमें मुँह ढके पड़ी है—सिसक रही है। अब बीस बार तो मैं समझा आई हूँ—मानती ही नहीं है।" चाची बोलीं।

"क्यों ?" इस बार सुधीन्द्र भाईने अचानक चौंककर मुँह उनकी ओर घुमाया।

"कहती है, मैं शादी नहीं करूँगी, मुझे पढ़ने दो, अभी मेरी इच्छा नहीं है। ख़ूब समझाया कि सभी लड़कियोंकी शादी होती है, तू क्या अनोखी है, और हम लोग क्या हमेशा ऐसी ही हैं। पर उसने तो न माननेकी जैसे क़सम ही खा ली है।" चाचीने फिर बताया।

"और वहाँ लड़का ज़िद किये बैठा है कि शादी करूँगा तो इसीसे करूँगा——बापसे साफ़ कह दिया है। फ़ोटो देखनेके बाद यहाँ चुपचाप आकर स्कूल जाते हुए देख गया कहीं, बस तभीसे ज़िद किये है। तभी तो ये सब आई थीं देखने।" माताजीने कहा, कुछ चिन्तित स्वरमें।

नीरजाके रोनेकी बात सुनकर बातोंका उत्साह मन्द पड़ गया। तभी बाहरसे जीजीका बच्चा फिर उनके पास आ गया——सबके मुँहकी ओर देखकर धीरे-धीरे बोला——"जीजी, वह बच्चा लेंगे।" उसकी निगाह मैटलपीसपर रखी उस बुद्ध-मूर्तिपर थी।

"बात क्यों नही करने देता, सब बच्चे बाहर खेल रहे है और तू यहाँ जमा है।" इस बार उसे माताजीने फटकारा, वह सहमकर चुपचाप खड़ा हो गया, गया नहीं। जीजी उसके सिरपर सान्त्वनासे हाथ फेरने लगीं। "ज़िद नहीं करते मुन्नी।"

"अब नीरजा बेचारी रोये नहीं तो क्या हो।" मैंने नीरजाका पक्ष लेकर माताजीसे कहा——"आप तो इस बुरी तरह पीछे पड़ जाती है कि ऐसा गुस्सा आता है कि फ़ौरन लड़ पड़े। नये आदमियोंके सामने अधिक हठ भी तो नहीं कर सकती, और आप हैं कि उन्हीके सामने पीछे पड़ गई, यह दिखाना, वह दिखाना। सच, सुधीन्द्र भाई, माताजीने नीरजाकी कोई चीज़ ऐसी नहीं छोड़ी जो दिखा न दी हो उन्हें। क्लासमें कराये गये कटाई-सिलाईके कामोंसे लेकर मेज़पोश, स्वेटर——सब। यहाँतक कि हाईजीनमें बनाये गये शरीरके विभिन्न अंगोंके डायग्राम्स तक। अब उन्हीके सामने ज़िद करने लगीं कि 'गाना सुना, गाना सुना', मुझे सच बड़ा गुस्सा आया।"

"सुनाया उसने?" सुधीन्द्र भाईने पूछा। दोनों घुटनोंपर अपनी कुहनी रखे, वे धीरे-धीरे अपनी माथेकी सलवटें टटोल रहे थे——बड़े चिन्तित, उदास-से।

"सुनाना पड़ा, सुनाये नहीं तो क्या करे। वहाँ पीछे पड़नेवाले तो

ऐसे-ऐसे ज़बर्दस्त हैं, हमारी माताजी, बुआ हैं, चाची हैं।" वास्तवमें मुझे नीरजाके दिखानेके ढंगपर बड़ा क्रोध आ रहा था।

"अब, भई, ये तो समझते नहीं हैं" माताजीने अपनी सफ़ाई बड़े गम्भीर स्वरमें दी—"लड़कियोंकी शादीका कितना बोझ माँ-बापपर चढ़ा रहता है इसे तो उनकी ही छाती जानती है, तुम्हारा क्या है, तुमने तो उठाई ज़बान और दे मारी। लड़कियाँ तो सब मना किया ही करती हैं। हमने अपनी शादीकी बात सुनी थी तो हम भी रोये थे।"

"नीरजा ऐसी लड़की नहीं है—वह वास्तवमें अभी पढ़ना चाहती है।" मैं अड़ा रहा।

"तो पढ़नेको कौन मना करता है, अब हमारी तरफ़से चाहे ज़िन्दगी भर पढ़ो। क्यों भई सुधीन्द्र?" माताजीने सुधीन्द्र भाईका समर्थन प्राप्त करनेके लिए उनकी ओर पंजा फैलाकर पूछा।

पर माथेकी सलवटें उँगलियोंसे टटोलते हुए वे न जाने कबसे क्या सोच रहे थे। जबसे आये थे, उनकी यह उदासी मुझे अखर रही थी। जीजीका बच्चा (उसे प्यारमें वह 'पापा' कहती थीं।) अब भी भगवान् बोधिसत्त्वकी मूर्तिके लिए हठ कर रहा था। मुझे उसका यह हठ करना बुरा लग रहा था। हम सब लोग बातें कर रहे थे पर उसे जैसे वही धुन। इस मूर्तिको ग्यारह रुपयेकी मैं विशेष रूपसे प्रदर्शनीसे लाया था। वास्तवमें उसकी चीनी बहुत बढ़िया थी। माताजीकी बातपर कोई कुछ नही बोला—थोड़ी देर सब चुप रहे आख़िर मुझसे नहीं रहा गया, मैंने पूछ ही लिया—"क्यों सुधीन्द्र भाई, जबसे तुम आये हो, बहुत उदास और सुस्त-से हो। क्या बात है?"

"हाँ रे, तू जबसे चुप ही है, सब लोग ऐसे ज़ोर-ज़ोरसे बोल रहे हैं।" माताजीने एकदम इस प्रकार कहा जैसे विषय बदलकर बोल रही हों, पर वह वास्तवमें इतनी देरसे उनकी बातका समर्थन न करनेकी सफ़ाई माँग रही थीं।

"मैं ?" बड़े भर्राये-से गलेसे उन्होंने कहा, फिर एकदम गला साफ़ करके संयत स्वरमें बोले--"मै ! नहीं, कोई खास बात नहीं है।"

"तो भी ?" मैंने पूछा "आपने बताया नहीं नलिनीके यहाँ कैसे हैं---तार क्यों दिया था ?"

"कौन नलिनी ?" जीजीने धीरेसे पूछा बुआसे, "मुझे तो नहीं मालूम।" कहकर उन्होंने प्रश्न-मुद्रासे चाचीकी ओर देखा; चाचीने माताजीकी ओर।

"सुधीन्द्रकी धर्म-बहिन हैं एक, मुरादाबादमें।" माताजीने बताया, फिर स्वयं जाननेकी इच्छासे सुधीन्द्रकी ओर देखा।

सुधीन्द्र भाई एक ओर मुँह घुमाये दरवाज़ेमेंसे अन्यमनस्कसे बाहर देख रहे थे, उसी प्रकार बिना हिले-डुले उन्होंने कहा, "नलिनी मर गई।"।

'झन्न'से जैसे हम लोगोंके बीचमें थाली गिर पड़ी हो। एक-साथ सबके मुँहसे निकला--"नलिनी मर गई ?--कैसे ?" हम बुरी तरह चौंक उठे।

सुधीन्द्र भाई उसी प्रकार अविचलित रहे, एकदम झटकेसे उन्होंने गर्दन घुमाकर माताजीकी ओर मुँह किया--फिर सूनी आँखोंसे देखते हुए बोले--"हाँ, नलिनी कल साढ़े नौ बजे मर गई। तार देकर उसने मुझे बुलाया था।"

"कैसे ?" एक बार सबके मुँहसे निकला। जीजीने माताजीसे पूछा, क्या उमर थी।" माताजीने हाथसे उन्हें चुप रहनेका इशारा किया, और मुँहपर सारी उत्सुकता लाकर सुधीन्द्र भाईके मुँहकी ओर देखने लगीं।

"कैसे मर गई ?--जैसे सब मर जाते है।" धीरेसे वह हँसे--कितनी व्यथा-भरी उनकी वह हँसी थी, जैसे मेरे हृदयमें जाकर ज़ोरसे वह लरज उठी। उनका सिर झुक गया था। दोनों हाथोंकी उँगलियोंको

एक दूसरेमें फँसा, उन्हें जोड़े हुए वे कुछ क्षण सोचते रहे। एक गहरी साँस छोड़कर उन्होंने झटकेसे सिर उठाया। "कैसे मर गई, एक लम्बी कहानी है। क्या कीजिएगा सुनकर।"

अब वातावरण एकदम बदल गया था। अभी होनेवाली बहस और आलोचनाएँ न जाने कहाँ चली गईं। सुधीन्द्र भाईकी उदासीका ऐसा कोई कारण होगा मैंने सोचा भी न था! "क्या उम्र थी?" जीजीने सीधे ही पूछ लिया।

"उम्र?——पूरे इक्कीसकी नहीं थी। यह मेरे पास फ़ोटो है।" उन्होंने अचकनके भीतर हाथ डालकर पर्स निकाल लिया——उसे खोलकर उन्होंने जीजीकी ओर बढ़ा दिया——उसमें एक पासपोर्ट साइज़का किसी लड़कीका फ़ोटो लगा था।

बड़ी उत्सुकतासे जीजीने फ़ोटो लिया——चाची, बुआ, माताजी सभी उसपर झुक गईं। "लड़की बड़ी सुन्दर है। मुँहपर कैसा भोलापन है। आँखें बड़ी प्यारी हैं। सीधी-सी लगती है।" सभीने अपनी-अपनी राय दी। ख़ूब देखनेके बाद जब वह पर्स उन्हें लौटाया गया तो इतमीनानसे देखनेके लिए मैंने ले लिया। लड़की वास्तवमें बड़ी सुन्दर और आकर्षक थी।

"कैसे मर गई? क्या क़िस्सा है, सुनाओ तो सही ज़रा।" जीजीने आग्रहसे पूछा। सभी लोग इसी आशासे उनकी ओर देख रहे थे।

"क्या करोगी, पूरा क़िस्सा है——लम्बा", सुधीन्द्र भाईने टालना चाहा।

"हमें अब क्या करना है, पूरा सुनाओ, तुम उसे कैसे जानने लगे।" जीजीने पास खड़े अपने पापाके दोनों हाथ पकड़कर कहा, क्योंकि हाथ-पैरोंसे उसकी खिलौना लेनेकी मूक ज़िद जारी थी। मुझे बड़ा बुरा लग रहा था। ऐसे ज़िद्दी बच्चे मुझे ज़रा भी पसन्द नहीं हैं। मैंने कहा——"पूरा तो सुनाओ——इस पापाको तो सँभालिए जबसे अड़ा हुआ है, यह ज़िद मुझे ज़रा भी पसन्द नहीं है।"

"नहीं-नहीं अब कहाँ ज़िद कर रहा है।" जीजीने उसके दोनों हाथ पकड़ लिये थे, लेकिन पैरोंको ज़मीनपर क्रम-क्रमसे पटकता हुआ वह मचल रहा था।

बात कहाँसे शुरू करें शायद सुधीन्द्र भाई यही बड़ी गम्भीरतासे सोच रहे थे। लोग सुननेके लिए उत्सुक हैं या नहीं उन्होंने अपने उदास-से नेत्रोंसे चारों ओर देखा। सिवा उस बच्चेके जो अब डरकर चुप हो गया था किन्तु गया नहीं था, सभी लोग उनकी ओर देख रहे थे। उन्होंने माताजीकी ओर देखकर कहना प्रारम्भ किया—"भाभीजी, जिन दिनों आप बदायूँ थीं न, सन् पैंतीसकी बात है, शायद मैं पिताजीके पास गाँवमें ही था। तभीका क़िस्सा है, लीजिए अब आप नहीं मान रहीं तो सुनिये—शुरूसे बता रहा हूँ। हाँ तो होऊँगा कोई छः सात सालका! तभी शहरसे पिताजीके दोस्त देवनारायण वकील आये उनके पास। पिताजीने बुलाया था। पिकनिकका प्रोग्राम था। तभी मैंने पहिली बार नलिनीको देखा था। बालोंमें रिबन बाँधती थी। रंग-बिरंगे फ्राकपर हल्के हरे रंगका छोटा-सा चेस्टर पहिने वह बिलकुल गुड़िया-सी लगती थी। मैं लाख ज़मींदारका लड़का सही, लेकिन था तो गाँवका ही। गेलिस लगाकर एक ढीला-ढाला हाफ़-पेण्ट और एक कोट पहिने था। उससे बोलनेकी बड़ी इच्छा होती थी, पर संकुचित होकर रह जाता। सुबह छः बजे ही वे लोग कारसे आ गये थे, वकील साहब भीतर थे, पिताजीसे बातें कर रहे थे। हम दोनों नाश्ता इत्यादि करके बाहर धूपमें दूर-दूर ही घूम रहे थे, शायद संकोच यह था कि कौन पहिले बोले। हमारे घरके सामने ही थोड़ी-सी जगह छोड़कर आम रास्ता था उसके दूसरी ओर एक छोटा-सा कच्चा तालाब—पोखर। उसमें आठ-दस बतखें तैर रही थीं, हम लोग थोड़ी देर उन बतखोंको देखते रहे, कभी-कभी कनखियोंसे एक-दूसरेको भी आपसमें देख लेते। अचानक अपने हाथोंको अपनी जेबोंमें और भी अधिक धँसाकर वह बोली, "देखो, कितना जाड़ा है, बतखोंको जाड़ा ही नहीं

लग रहा।" मैंने धीरेसे कहा, "ये तो ऐसे ही तैरती रहती हैं।" इसके बाद तो वह बिल्कुल मेरे पास आकर दुनिया भरकी बातें करने लगी। उसके बोलनेके बेझिझक ढंगको देखकर तभी मैं चकित रह गया। दुनिया भरकी तो उसे बातें याद थीं; और बड़ी बातूनी। उसने सब बताया जिस स्कूलमें वह पढ़ती है उसमें कौन टीचर अच्छी है कौन बुरी; किस-किस लड़कीसे उसकी अधिक मित्रता है। जिस 'बस'में वह जाती है उसका नम्बर क्या है। खैर उस दिन उसने खूब बातें कीं। मैं बिलकुल चुप रहा क्योंकि मेरे पास कुछ भी नहीं था। फिर भी हम दो दिनोंमें खूब घुल-मिल गये थे। कैरम वह बड़ा अच्छा खेलती थी। और ताश, लूडो, स्नेकलैडर, ट्रेड, ओम्नीबस न जाने क्या-क्या तो वह खेल लेती थी। एक दिन बैठकर उसने मुझे शतरंजकी चालें समझाईं। पर भई, मेरी समझमें तो कुछ आया नहीं। खैर पिकनिकके पश्चात् जब वे लोग चले गये तो अचानक मुझे लगा जैसे दुनियामें कोई काम करनेको ही नहीं रह गया है। फिर तो जब भी पिताजीके साथ शहर जाते उनके यहाँ ज़रूर जाते। लेकिन थोड़े दिन घर रहकर वह अपने किसी सम्बन्धीके यहाँ चली गई।

"मेरी पढ़ाई भी चलती रही।" सुधीन्द्र भाई कुछ रुके। तभी मैंने देखा, धीरे-धीरे कुनमुनाता हुआ वह पापा रह-रहकर जीजीको नोचता हुआ अपनी ज़िदको चालू रखे हुए है। अदम्य इच्छा हुई, ज़ोरसे एक चाँटा मारकर धकेल दूँ। न बातें करने देता है, न कुछ सुनता है। बड़े लाड़ले आये। पर जैसे-तैसे अपनी इस इच्छाको दबाया। निश्चय कर लिया कि इस बार इसने बातोंमें ज़रा भी विघ्न डाला तो कान पकड़कर बाहर निकाल दूँगा फिर चाहे जीजी जो बकती रहें।

"मैट्रिक कर लेनेके पश्चात् वकील साहबमें और पिताजीमें यह एक अच्छा खासा विवाद उठ खड़ा हुआ कि कॉलेजमें पढ़ाई जारी रखनेके लिए मैं हॉस्टलमें रहूँ या वकील साहबके यहाँ। पिताजी हॉस्टलके पीछे

पड़े हुए थे क्योंकि दो-चार महीनेकी बात होती तो कुछ नहीं था। खैर मैं यहाँ हॉस्टलमें आया। वकील साहबने आज्ञा दे दी कि दिनमें एक बार यहाँ ज़रूर आओगे। हॉस्टलमें अच्छी तरह जम लेनेके बाद मैं वकील साहबके यहाँ जाने लगा। एकाध घंटा बैठता और चला आता। वकीलनी (जिन्हें मैं चाची कहता था) और वकील साहबसे ही बातें करता था। बातोंमें वह नलिनीकी तारीफ़ करते, हमारी नलिनी ऐसी है, वैसी है, यों पढ़नेमें तेज़ है, यों खेलनेमें होशियार है। एकाध बार तो मैंने सुना, फिर तो मुझे झुँझलाहट आने लगती। क्योंकि उसकी प्रशंसा करते वह थकते नहीं थे और मुझे लगता था जैसे उनके कहनेका बस इतना ही मतलब है——तुम चाहे जितने होशियार हो, नलिनी तुमसे लाख दर्जे इंटलिजेंट है। अक्सर वह पूछते, कुछ तकलीफ़ तो नहीं है। रोज़ ही कुछ न कुछ खिला देते। मैंने वहाँ सैकेंड-इयर किया, और छुट्टियोंके पश्चात् जब मैं वहाँ गया तो बताया गया कि नलिनी अब वहीं आ गई है। मेट्रिकमें फ़र्स्ट पास हुई है, सैकेंड पोजीशन है। यहीं पढ़ेगी। कभी-कभी मैं उसके विषयमें सोचा करता, न जाने कैसी होगी। हम लोग सन् छत्तीसमें मिले थे और अब था पैंतालीस। नौ-दस वर्षका अन्तर बहुत होता है। तभी वकील साहबने उसे बुलाया, "चाय ले आओ नलिनी।" और नलिनी चायका ट्रे लेकर आई। मैं बुरी तरह चौंक गया, पहिली जो कुछ धुँधली नलिनी मेरे मानस-पटलपर थी उसकी इससे कोई तुलना नहीं थी। हमने सज्जनतामें नमस्कार किया। नलिनीने चायका ट्रे रखकर नमस्कारका उत्तर दिया, मुस्करा कर, और बेझिझक वकील साहबके पास बैठ गई।

"भाई साहब, फ़र्स्ट डिवीज़नमें पास होनेकी मिठाई तो खिलवाइये।" मैं चकित रह गया, लाख बचपनमें मिले सही लेकिन मैं तो एकदम किसी लड़केसे भी इस तरह नहीं बोल सकता। फिर वह तो पन्द्रह वर्षकी एक लड़की थी जो धोतीमें सिमटी-सिमटाई-सी अपनेमें ही लीन हो जानेकी

चेष्टा किया करती है। पर न तो उसकी वाणीमें, न व्यवहारमें, किसी प्रकारकी झिझक, संकोच या लज्जा मुझे लगी, इसके विपरीत मैं स्वयं ही सोचमें था कि क्या उत्तर उसे दूं। चाय बन गई थी तभी अपना कप उठाकर वकील साहबने कहा--"तुम तो इसे भूल-भाल गये होगे, यह तो वही नलिनी है जो तुम्हारे यहाँ गई थी, यह चुड़ैल कुछ भी नहीं भूलती--न मालूम बचपनसे ही ऐसी याद्दाश्त लेकर पैदा हुई है। छोटी-से-छोटी बात सब इसे याद है।"

"इन्हें क्यों याद होगा--हारते थे न, जिस खेलको देखो उसीमें गोल रखे थे। मिठाई चाहे जब खिलवाइये लेकिन चाय क्यों ठंडी किये डालते हैं?" और वह कुटिलतासे मुस्कराकर कपपर झुक गई। मैं उसकी ओर सीधा देखनेका साहस नहीं कर सका। इधर-उधर भागती दृष्टिको समेटकर उस ओर लानेकी चेष्टा करता, पर जैसे वह वहाँ पहुँचकर किसी शक्तिसे छिटक उठती। उसके इस उत्तरपर भी मैं कुछ नहीं बोला।

"भाई साहब ! आप तो बहुत ही शर्माते हैं।" उसने फिर कोंचा। इस बार मेरा सारा संकोच जैसे इस वाक्यकी प्रतिक्रियासे क्षोभ बन उठा। बड़ी असभ्य लड़की है, मनमें सोचा, जबसे आई है कुछ-न-कुछ बोले ही जा रही है। जब मैं नहीं बोलना चाहता तो मेरे पीछे क्यों पड़ी है। मैंने कहा--"आप तो मुझसे अच्छी तरह पास हुई हैं आप पहिले, खिलाइये न।"

"या तो बिल्कुल ही नहीं बोल रहे थे, और अब बोले तो ऐसी शिष्टतासे बोले कि छोटे बड़े सबका ध्यान भुला दिया।" जल्दीसे चायकी घूँटको घूँटकर वह बुरी तरह हँस पड़ी। हाथका कप काँप गया और चाय छलक गई। वकील साहब इस सारे वातावरणका आनन्द ले रहे थे। बनावटी क्रोधसे बोले--"क्या कर रही है, तमीज़से बात कर, सारे कपड़े ख़राब किये लेती है?" मुझे वकील साहबपर क्रोध आ रहा था यह तो नहीं कि ठीकसे डाँटें, तभी तो इतनी बेशर्म हो गई है। लड़कियोंके इतने निर्लज्ज

होनेके मैं खिलाफ़ हूँ। यही चीज़ तो उनमें अन्य चारित्रिक दुर्बलताओंको जन्म देती है...और भी मैंने उसके विषयमें न जाने क्या-क्या उलटा सीधा सोच डाला। बातोंका उत्तर तो मैंने उस समय दिया, पर मुझे उसका बेझिझकपन अधिक पसन्द नहीं आया, और वकील साहब थे कि अपनी बेटीकी इस बहादुरीपर फूले पड़ते थे। माँ-बाप ऐसा लाड़-प्यार करते हैं तभी तो लड़कियाँ बिगड़ जाती हैं। सामने तो बड़ी इतराती रहेंगी...और सैकड़ों सिनेमा-उपन्यासोंके दृश्य उस समय मेरे सामने आये। जब वही इतनी बेशरम है तो मैं ही क्यों हयादार बना रहूँ--सोचकर मैंने सारा संकोच छोड़ दिया। उसकी ओर देखा, वह सुन्दर थी पर स्त्रियोंमें एक स्वाभाविक लज्जा, हलका-सा संकोच रहता है, वह असुन्दरको तो सुन्दर बनाता ही है, वह जैसे सुन्दर पर भी क़लई कर देता है—पर वहाँ कुछ नहीं, वही सपाट मुँह। हाथमें केवल दो सोनेकी चूड़ियाँ। ऊपरसे नीचे तक कुछ नहीं। उल्टे पल्लेकी धोती, सो भी कन्धे-पर झूल रही थी—नये आदमीके सामने जाते हैं तो थोड़ा सिरपर रख लेते हैं। मै सोचने लगा इस लड़कीको इतना निर्लज्ज बना देनेमें इसके इस सौन्दर्यका कितना हाथ है। जब चलने लगा तो बोली--"देखिए भाई साहब, मुझे इस बार तीन इम्तहान देने हैं। कालिजमें इन्टरका तो है ही, एक विशारद और दूसरा एक संगीतका। कहिए कैसा रहेगा ?"

"बड़ा अच्छा रहेगा।" कहा हमने, पर सोचा शायद यह दिखाना चाहती है कि मैं कितनी पढ़ाकू हूँ।

"संगीतके लिए हमने एक ट्यूटर लगा लिया है, सत्तर रुपये लेगा। विशारद हमें आप करायेंगे।" उसने एक बार वकील साहबकी ओर देखा। मैं इस अप्रत्याशित बोझसे जैसे अचकचा उठा। वकील साहब बोले--"हाँ दिलवा दो भई, पास तो यह हो ही जायेगी, लेकिन तुम तैयारी करा दोगे तो ज़रा अच्छी तरह पास हो जायेगी। हिन्दीके तुम विद्वान् भी हो, सब जानते हो। ठीक रहेगा। सन्ध्याको चाय यहीं पिया करो।"

"हाँ-हाँ।" करके मैंने स्वीकृति दी। उस समय तो मुझे यह विश्वास हो गया था, इस लड़कीको अपने सौन्दर्यका गर्व है। इसीलिए यह इतनी निर्लज्ज है। उसे गर्व है तो रहा करे—गर्व करनेवालोंके लिए यहाँ भी गर्व कम नहीं है। दो-एक दिन तो पढ़ाऊँगा, ठीकसे पढ़ी तो ठीक है, ज़रा भी तीन-पाँच की तो उसी दिन छोड़ दूँगा, कोई बहाना बना दूँगा। ज़्यादा-से-ज़्यादा वकील साहब बुरा ही तो मानेंगे। इस क्षोभ और द्वन्द्वके भीतर कभी मुझे लगता जैसे कोई बड़े मृदुल स्वरमें पूछता—'किन्तु यह नलिनी है कैसी लड़की?' ख़ैर उस दिन, दिन-भर मैंने उसके विषयमें जो भी सोचा वह अधिक अच्छा नहीं था। उसको लेकर मैंने न जाने किन कुकृत्योंकी कल्पना की।

"और सन्ध्याके समय मैं उसके पास जाने लगा, उसे पढ़ाने। भाभीजी, जब आज भी उन बातोंको सोचता हूँ तो शर्मसे गर्दन झुक जाती है। किसीके विषयमें इतनी जल्दी सम्मति बना लेना कितना ख़राब है, ख़तरनाक है। सच कहता हूँ मैं, उस जैसी बद्धिवाली लड़की मैंने ज़िन्दगीमें एक भी नहीं देखी। ओफ़! क्या दिमाग़ पाया था उसने। किसी भी बातको एक बार समझा दो, कम-से-कम इस ज़िन्दगीमें दूसरी बार समझानेकी ज़रूरत ही नहीं। कभी कापीमें मीनिंग या नोट्स नहीं लेती थी। और इतनी सुन्दर लिखाई कि क्या कहूँ। एक किताब पढ़ लेती तो शब्द-प्रतिशब्द वह उसे महीनों याद रहती, बहुत-से स्थानोंपर वह मुझे पढ़ाती थी या मैं उसे, यह मैं आज तक नहीं जान पाया। मैं उसे बड़े ध्यान और गम्भीरतासे पढ़ाता और वह बड़े आनन्दसे पेन्सिलसे खेलती या पेनसे नाख़ून रँगा करती। मैं झुँझलाकर एकदम पूछ बैठता "बताओ मैंने क्या बताया?" और वह मेरा प्रत्येक शब्द दोहरा देती। मैं आश्चर्य करता यह लड़की है या आफ़त! पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी, और भी न जाने कितने कवियोंकी सैकड़ों कविताएँ उसे याद। मैं कठिन-से-कठिन काम उसे करनेको देता और वह बड़ी आसानीसे सिर हिलाकर स्वीकार

कर लेती, यह तो रही उसकी कुशाग्र बुद्धि। लेकिन मैं बताना यह चाहता हूँ कि वह लड़की असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न थी। उसके निबन्ध देखकर उसके मनन पर सिर खुजाना पड़ता था। उसकी कहानियाँ देखकर आँखें फटी रह जाती थीं। मैंने उसे तीन वर्ष पढ़ाया। इस बीचमें उसकी प्रत्येक अच्छी-बुरी बात देखनेका मौक़ा मुझे मिला। अब इसे आप चाहे जो कुछ भी कहिए—मेरी दुर्बलता या बुद्धिमानी—मैं उसकी एक-एक बातका भक्त बन गया। उसका संगीत देखा तो दाँतों तले उँगली दबानी पड़ी, केवल यही नहीं कि बाजेको पीट-पाट लिया, और उलटे-सीधे सिनेमाके गीत गा लिये। वास्तवमें उसका स्वर था, उसे संगीतका ज्ञान था। महादेवीके गीत इस तरह सुनाती थी कि बस, तबियत झूम उठे।" कहकर सुधीन्द्र भाई कुछ देरके लिए रुके कि उनकी यह प्रशंसा अतिपर तो नहीं पहुँच गई है। माताजीकी ओर देखकर फिर उन्होंने खिलौना लेनेके लिए अपनी मूक ज़िद जारी रखते पापाको शून्य आँखोंसे देखा। फिर कहा—

"भाभीजी, आप सोचेंगी मैं व्यर्थ ही उसकी इतनी प्रशंसा करके उसे आसमानपर क्यों रखे दे रहा हूँ। लेकिन मुझे वास्तवमें ऐसा लगता है उसकी पूरी बात कह ही नहीं पा रहा हूँ। ख़ैर, तब मैंने जाना कि क्यों यह लड़की निडर, निर्भीक और बेझिझक है, क्योंकि उसके हृदयमें भय, कलुष, या उलझन नहीं है। वह उन लड़कियोंमेंसे नहीं है जो मनमें हज़ार उल्टी-सीधी बातें रखते हुए भी ऊपरसे अपनेको बिल्कुल निर्लिप्त दिखाया करती हैं। और उसके स्वभावकी वह सबलता, वाणीकी तीव्रता, मुक्त हास्यकी चंचलता उसके रूप-गर्वके प्रतीक नहीं हैं, वरन् वह उसकी प्रखर प्रतिभाका प्रचंड विस्फोट है, जो उसके व्यक्तित्वके इन सब रूपोंमें दिखाई देता है। हो सकता है मैं उसकी प्रशंसा करनेमें सन्तुलन न रख पा रहा होऊँ, पर वह लड़की वास्तवमें ऐसी थी, जैसी दो-चार मुहल्लोंकी तो बात ही क्या, दो-चार शहरोंमें नहीं होती। कहीं चलते-फिरते उसने नई बुनाई देखी, खटसे उसे घरपर आकर डाल लिया। न किसीसे पूछनेकी ज़रूरत न सीखनेकी..."

"तो ऐसी तो हमारी नीरजा भी है, जहाँ जो भी देखेगी फ़ौरन उसे ज्यों-का-त्यों दिमाग़में रख लेगी।" एकदम माताजीने कहा––मनमें हल्की भुँझलाहट हुई। पता नहीं माताजी सुधीन्द्र भाईकी बात सुन रही हैं या तुलनामें लगी हैं।

"तो ऐसी वह लड़की थी।" माताजीकी बातको स्वीकार करके सुधीन्द्र भाई बोले, "मैं उसे पढ़ाता था किन्तु इस बातका निश्चय मुझे हो गया कि यह केवल संयोग है, जो मैं उससे पहिलेसे पढ़ते होनेके कारण उससे आगे हूँ और उसे पढ़ा रहा हूँ, नहीं तो इसे स्वीकार करनेमें मुझे कोई झिझक नहीं कि वह मुझसे कई गुनी अधिक बुद्धिमती, प्रतिभा-शालिनी थी। सबसे बड़ी बात जो मैंने उसमें नई देखी वह यह कि किसीकी अप्रत्याशित बातसे एकदम प्रभावित नहीं होती थी, इसीलिए प्रायः वह भावुक नहीं थी। जब मैं उसकी उन बेझिझक खुली आँखोंमें देखता तो लगता न मालूम कितने गहरे खुले आकाशको मैं देख रहा हूँ, जिसका कहीं भी ओर-छोर नहीं है। मुझे निश्चय हो गया कि यह लड़की किसी दिन सारे देशको अपनी विलक्षण प्रतिभासे चकित कर देगी।

"ख़ैर, मैं उसे पढ़ाता रहा। एक दिन उन चाचीने बताया कि अपने जिन सम्बन्धीके यहाँ वह पहिले 'मैट्रिक' तक पढ़नेको रही थी, शायद वे उसके चाचा थे, उनका पत्र आया है। उन्होंने लिखा है कि नलिनीके लिए लड़का उन्होंने ठीक कर लिया है, लेकिन नलिनीने स्पष्ट कह दिया कि उसका विचार अभी शादी करनेका क़तई नहीं है। अभी वह थर्ड ईयरमें ही पढ़ती है; कम-से-कम एम० ए० तक वह इस विषयपर सोचेगी भी नहीं। फिर दूसरा पत्र आया वह लड़का इसी मुहल्लेका है, हमारी ही जातिका है, पिछले आठ-दस सालसे मैं उसे देख रही हूँ––बड़ा सुशील और सीधा लड़का है। उसीने नलिनीको मैट्रिकके लिए इंग्लिश पढाई थी––नलिनी भी उसे जानती है। घर काफ़ी सम्पन्न है––वह सुखी रहेगी, पास रहेगी। लेकिन नलिनी भी एक नम्बरकी ज़िद्दी लड़की––

एक नहीं मानी। फिर तीसरा पत्र आया--उस लड़केने नलिनीमें पता नहीं क्या देखा है कि अपने बापसे स्पष्ट कह दिया है कि शादी करूँगा तो इसी लड़कीसे, नहीं तो बिल्कुल नहीं। इसी विषयमें वे मुझसे सलाह लेने आई थीं कि अब क्या करें? नलिनी पास बैठी सब सुन रही थी। मैं कुछ राय ज़ाहिर करूँ इससे पहिले वह स्वयं बोली--"पता नहीं क्यों लड़कोंको शादी करनेकी ऐसी जल्दी पड़ती है। लाइए मैं उन्हें लिख दूँ सीधा, कि मै आपसे शादी नहीं करना चाहती।" मैंने उसकी ओर देखा, शायद वह मज़ाक़में कह रही हो, पर उस समय वह काफ़ी गम्भीर थी। मैं उस ओर देख नहीं सका। वकीलनीने कहा, समझाओ इसे। यद्यपि मन ही-मन मैंने स्वीकार किया कि नलिनीकी बात ठीक है; जब वह पढ़ना चाहती है तो उसे पढ़ने देना चाहिए। तो भी मैंने यों ही कहा--'जब वह इतना हठ पड़ रहा है तो मान जाओ न, कर-करा लो उसीसे शादी।'

"उसने मुझे ठीक इस तरहसे देखा, जैसे किसी बच्चेको देखते हों और वह झिड़ककर बोली--'आप भी क्या बात करते हैं, भाई साहब, बच्चों-जैसी। अब अचानक मै ही आपसे कहने लगूँ कि मुझसे शादी कर लीजिए, तो कैसे हो सकता है। न मैंने उन्हें कभी इस दृष्टिसे देखा, न मेरे मनमें कभी ऐसी बात आई।' उसके मुखपर उत्तेजना थी। उसका मुख-मंडल प्रदीप्त था।

"मुझे हँसी आई---कैसी मूर्खताकी उपमा इसने दी है। कहा--'न सोचा न सही, तब भी इसमें हर्ज क्या है?'

'हर्ज क्या है?' उसने बच्चोंकी तरह मुँह बिरा दिया--"हर्ज है कैसे नहीं, ऐसा हो नहीं सकता। मैंने उन्हें सदैव गुरुकी पूजा और भाईकी पवित्र दृष्टिसे देखा है। जिस तरह आप हम लोगोंमें काफ़ी घुल-मिल गये हैं न, ठीक वैसी ही उनकी बात है वहाँ। मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि एक दिन वे इस प्रकार हठ करके बैठ जायेंगे कि मैं शादी करूँगा तो

इस नलिनीसे ही करूँगा।" वह थोड़ी देर चुप रही, फिर जैसे स्वयं ही सोचती-सोचती बोली—'हिश्, मैं नहीं करूँगी शादी-वादी।'

"ख़ैर, मैं चुप रहा। दो-तीन दिन फिर उसी स्वाभाविकतासे कटे। एक दिन गया तो पता चला कि उसके वही चाचाजी आये हुए हैं। उस दिन नलिनी बड़ी चिन्तित—उदास थी। उसने बताया, 'आज रात-भर मैं ठीकसे नहीं सो पाई, चाचाजी आये हैं, बता रहे हैं कि लड़केको भी ज़िद आ गई है कि शादी बस इसीसे होगी। उसने तीन-चार दिनसे अनशन कर रखा है। जब मैं शादी नहीं करना चाहती तो क्यों ये लोग मुझे विवश कर रहे हैं कि मैं शादी करूँ ही। अब आप ही बताइए मैं क्या करूँ। चाचाजी इसीलिए आये हैं, ये लोग किसीका आत्मविकास होते नहीं देख सकते। मैं बुद्धिमान हूँ, मैं प्रतिभाशील हूँ, मैं सुरीला गाती हूँ, सुन्दर बजाती हूँ और सौन्दर्यशालिनी हूँ,—फिर ? कहिए, आपको इन सब बातोंसे क्या मतलब ? आपको यह कैसे विश्वास हो गया कि मैंने यह सब चीज़ें आपके ही लिए सहेज कर रखी हैं। इसमें मेरा अपना कुछ नहीं है ? अजब आफ़त है।' और क्रोध अथवा घृणासे उसने अपना निचला ओठ ज़ोरसे चबाया। मैं चुपचाप देखता रहा। उसके वाक्योंमें सत्यकी ज्वालाएँ थीं। लेकिन मैं, उस समय, क्या कर सकता हूँ—समझमें नहीं आता था। उसे समझाया "शादी तो नलिनी तुम्हें करनी ही है अब नहीं तो दो वर्ष बाद। फिर तुम्हें अब ही ऐसी क्या आपत्ति है ?"

'तो आपको ऐसा अधिकार किसने दिया कि आपने तो मुझे देखा, और खटसे मचल पड़े; अनशन कर दिया कि मैं तो इसीसे विवाह करूँगा—और हम सोच भी नहीं पाये कि सारे घरवाले चील-कौवोंकी तरह नोंचने-खोंचने लगे—कर इसीसे, कर इसीसे।' उसकी आँखोंमें, पहिली बार मैंने देखा आँसू आ गये थे, जिन्हें वह एक घूँट-भरके पी गई, फिर बोली—'भाई साहब, आप तो समझेंगे, मैं और लड़कियोंकी तरह बहानेबाज़ी कर रही हूँ पर मैं हृदयसे कह रही हूँ, मुझे शादी करनेकी इच्छा ही नहीं

है।' वह चुपचाप कुछ सोचती रही। फिर बोली—'चाचाजीने मुझे रातको कोई दो घंटे लेक्चर पिलाया, नाश्तेके समय सुबह समझाया और अभी बाहर गये हैं आकर फिर भाषण देंगे—माताजी, बाबूजी—सभी मेरे पीछे पड़े हैं। अब आप भी. . .मैं क्या करूँ भाई साहब, इससे अच्छा तो मैं कहीं मर जाती।' उसकी इस अन्तिम बातसे अचानक मैं चौंक गया। यह उसके मुँहसे निकला हुआ पहिला वाक्य था जो उसने जैसे व्यथासे तड़पकर कहा था। मैं स्वयं भी उन दिनों काफ़ी उद्विग्न, बेचैन, व्यथित हो रहा था। मेरी स्थिति बड़ी विचित्र थी, यदि मैं शादीका विरोध करता तो वे लोग मेरे और नलिनीके विषयमें न जाने क्या-क्या सोचते। पर फिर भी, बार-बार जैसे कोई ललकार कर पूछता—'क्या मैं उसके लिए कुछ नहीं कर सकता?—क्या नहीं कर सकता कुछ?' और यह प्रश्न ही धमककर ध्वनि-प्रतिध्वनिके रूपमें व्याप्त हो जाता कि उसके उत्तरके विषयमें मैं सोच ही नहीं पाता था। बड़ा खिंचाव शिराओंमें था। मैंने दुखी स्वरमें कहा—'क्या बताऊँ नलिनी, मै स्वयं भी कोई राह नहीं सोच पाता! तुम्हारी प्रतिभाका मैं शुरूसे ही क़ायल हूँ। मेरा विश्वास था कि यदि यों ही तुम्हारा स्वाभाविक विकास होता गया, तो तुम एक दिन अपनी प्रतिभासे संसारको चकाचौंध कर दोगी। पर अब. . . .।''

अचानक सुधीन्द्र भाई अपनी बात कहते-कहते रुक गये, क्योंकि मैंने आगे बढ़कर उस ज़िद्दी पापाके दोनों कान पकड़ लिये थे। ग़ुस्सा तो ऐसा आ रहा था कि दो मारूँ तानकर चाँटे—तबियत ठिकाने आ जाय। बड़े लाड़ले बने हैं, जबसे मना कर रहे हैं कि मान जा मान जा तो समझमें ही नहीं आता। सब बच्चे बाहर खड़े हैं और ये बेचारे यहाँ खड़े हैं, अकेले, यहाँ खिलौना लेनेको। ले खिलौना, अब तुझे कैसा खिलौना देता हूँ। दोनों कान खींचते ही पापा ज़ोरसे चीख़ा, एक बार उसने मेरी क्रुद्ध सूरत देखी और जीजीका पल्ला पकड़ लिया।

"अरे, क्या कर रहा है रे. . ." माताजी चिल्लाई—"क्यों उसके

कान उखाड़े ले रहा है ?" मैं उसके कान यों ही खींचे-खींचे बाहर ले चला।

"हाँ ले जा, ले जा, जबसे समझा रहे हैं तो मानता ही नहीं है।" जीजीने बनावटी ग़ुस्सेसे कहा; वास्तवमें उन्हें मेरा यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा था। ज़िद करता हुआ पापा, बुरा माताजीको भी लग रहा था, पर जीजीकी ओर देखकर वे एकदम उठीं, पापाकी बाँह पकड़कर मुझे एक ओर धक्का दे दिया। "मानता ही नहीं है।" पापाको उन्होंने गोदमें उठा लिया—"भैया ज़िद नहीं करते।"

मुट्ठी बनाकर आँखोंको मलते हुए उसने सिसक-सिसककर मूर्तिकी ओर एक हाथ बढ़ाकर कहा—"अम्मा, वो लेंगे।"

"अच्छा ले।" माताजी उसे उठाये-उठाये मेंटलपीसके पास गई और वहाँसे गेरुए रंगकी चमकदार चीनीकी बनी वह मूर्ति उसे दे दी। उसने दोनों हाथोंसे कसकर पकड़ लिया।

मैं भुनभुनाया, "उसका क्या है, वह तो ज़रा-सी देरमें तोड़ देगा। ग्यारह रुपयेकी एक मूर्ति लाया हूँ—सो भी अब मिलती नहीं है—ऐसी सुन्दर और गठी हुई।"

"हाँ-हाँ नहीं तोड़ेगा।" माताजीने कहा—"हम दे देंगे पैसे, दूसरी ले आना।" फिर उन्होंने पापाको जीजीके पास बैठा दिया फ़र्शपर ही! जीजीने उसे समझाया—"हाँ भैया, तोड़ियो नहीं।"

"अब मिली जाती है दूसरी!" मैं मन-ही-मन दाँत पीसकर रह गया। चुप रह गया यह सोचकर कि सुधीन्द्र भाई न जाने क्या सोचेंगे उनकी बात सुनते-सुनते ऐसा बखेड़ा मचा दिया। उसकी ओर एकाध बार देखकर उनकी बातके प्रति उत्सुकता दिखाई—"हाँ, फिर क्या हुआ?" पापा मूर्तिको फ़र्शपर रखकर खेल रहा था—कभी इधरसे झाँककर देखता, कभी उधरसे।

सुधीन्द्र भाई बड़ी विचित्र-सी दृष्टिसे यह सब देख रहे थे। हो सकता है उन्हें बुरा न लग रहा हो, पर उन्हें विशेष अच्छा भी न लग रहा था—

मैंने तत्काल अनुभव किया। इसीलिए ऐसा भाव दिखाया जैसे कुछ हुआ ही नहीं—हमने अधिक-से-अधिक अपना ध्यान उनकी ओर केन्द्रित कर दिया।

"हाँ तो दूसरे दिन जब मैं गया तो चाचीजी बड़ी दुखी-सी आई—'तुम्हीं बताओ सुधीन्द्र, मैं क्या करूँ, उसे लाख समझाया, मैंने समझाया, तुम्हारे वकील साहबने, लालाजीने; लेकिन वह तो एक ही रट लगाये है—मैं तो पढ़ूँगी—मैं तो पढ़ूँगी। लड़का कहता है कि तू ज़िन्दगी-भर पढ़ेगी तो मैं ज़िन्दगी-भर पढ़ाऊँगा, अपना घर-बार सब बेचकर पढ़ाऊँगा। जो तेरी इच्छा हो सो कर पर वह मानती ही नहीं है।' 'कहाँ है?' मैंने पूछा। बताया, 'भीतर पड़ी है पलंगपर, न खाती है, न नहाती है। बस रोये जा रही है, अब हमारी तबियत तो इससे बड़ी हलकान होती है। इतनी बड़ी हो गई आजतक नहीं रोई और अब. . .तुम्हीं समझाओ।' मैंने पूछा, 'चाचाजी गये?' उन्होंने जिस ढंगसे हाँ कहा मैं कुछ-कुछ समझ गया। कुछ नहीं कहा। चुप भीतर गया। कमरेमें पलंगपर वह चुपचाप औंधी पड़ी थी—रह-रहकर उसका सारा शरीर काँप उठता था। मैं कुछ देर चुप रहा, फिर पुकारा—'नलिनी, नलिनी।' उसने कुछ नहीं कहा। मैं उसके पास ही पलंगपर बैठ गया। दोनों कन्धे पकड़कर उसे सीधा किया—देखा वह रो रही थी। उसके खिले गुलाबसे चेहरेको जैसे पाला मार गया था, सारा मुँह उसका लाल हो गया था, और आँखें बीरबहूटीके सुर्ख़ रंगकी तरह जल रही थीं। उस समय एक क्षणको भाभीजी, सच मुझे ऐसा लगा कि इस दहकते चेहरेके लिए मैं क्या न कर दूँ। किस आसमानके नीले और मनहूस पर्दोंको चीर दूँ जो उसपर अपनी काली छाया डाले हैं और कौन-सा पहाड़ है जिसे उठाकर फेंक दूँ, जो इसका रास्ता रोके हुए है। उस समय मुझे अपनी बाहोंमें वज्र जैसी शक्ति लहरें लेती अनुभव हुई। मैंने उसका सिर लेकर अपनी गोदमें रख लिया—बाल उसके चेहरेपर फैल आये थे उन्हें एक हाथसे इधर-उधर कर दिया। बड़े दुखी

स्वरमें कहा—'नलिनी, ऐसे क्यों रो रही हो?' उसका रोना बन्द हो गया था, केवल कभी-कभी एक हिचकीसे उसका सारा शरीर सूखे पत्तेकी लड़खड़ाहटकी भाँति काँप उठता था। मेरी समझमें नहीं आता था मैं क्या कहकर उसे सान्त्वना दूँ। फिर कहा—'नलिनी, रोओ मत।' लेकिन नलिनीकी इतनी देरसे संचित रुलाई फिर फूट पड़ी और वह फिर बुरी तरह रो उठी। मेरा कंठ स्वयं भीग गया था और आँखोंमें आँसू बड़ी मुश्किलसे रुक पा रहे थे। फिर भी मैंने उसे समझाया—'नलिनी, जो हो गया सो हो गया। वह तुम्हें विश्वास दिलाता है कि पढ़ने इत्यादिकी पूरी सुविधा देगा। क्यों व्यर्थ रो-रोकर अपना स्वास्थ्य ख़राब करती हो।' लेकिन जैसे वह कुछ सुन ही नहीं रही थी। उसे तो इस समय जैसे रुलाईका दौरा आ गया था—बस रोये जा रही थी। भाभीजी, मैं ठीक बताता हूँ उस दिन तीन घंटे मेरी गोदमें पड़ी-पड़ी वह काँटोंपर पड़ी मछलीकी तरह तड़फड़ाती रही। उस दिन मैं भी रोया। लेकिन उस दिनके बादसे उसके शरीरकी स्फूर्ति, उसके चेहरेकी उत्फुल्लता, उसकी भोली आँखोंका उल्लास जैसे किसीने मन्त्रके ज़ोरसे खींचकर फेंक दिये और वह एक साधारण कंकाल मात्र थी—निस्तेज और उदास। किसी ओर देखती तो बस देखती रहती।

"और पिछले साल उसका विवाह हो गया। ज़िन्दगीमें शायद दूसरी बार वह जी खोलकर रोई। उस दिन उसने मुझसे कहा—'बस भाई साहब, अब नहीं रोऊँगी, क्योंकि जो चीज़ मेरे पास असाधारण थी, जिसका मुझे गर्व था और जिससे मुझे इतना मोह था—अब सदाके लिए उसकी चाह छोड़ दी है। बस अब मैं एक साधारण लड़की हूँ—दुर्बल और कमज़ोर।"

वह सुसराल चली गई। थोड़े दिन बाद आई। जब मैंने फ़ाइनलकी परीक्षा दी तभी उसने बी० ए०की परीक्षा दी—जैसे बिल्कुल निरुत्साहित और निर्लिप्त होकर। आपको आश्चर्य होगा, तो भी बी० ए०में उसने

टॉप किया। विभिन्न पत्रोंमें जब उसके चित्र छपे, और उसने देखे तो मुझे लगा उसका वह उन्मुक्त उल्लास फिर उसे कुछ समयको मिल गया है। बड़े प्रसन्न होकर उसने कहा--'भाई साहब, चाहे कोई कितना ही विरोध क्यों न करे, मैं तो ख़ूब पढ़ूँगी।' पर तभी फिर अचानक कुछ क्षणको उदास हो गई। उन दिनों उसने संगीतका अभ्यास ख़ूब बढ़ा लिया था। रोज़ मुझे कुछ-न-कुछ सुनाती--उन दिनों वह बड़ी प्रसन्न रही। ओफ़, कितना सुन्दर वह गाती थी। आजतक मैं निश्चय नहीं कर पाया कि उसकी प्रतिभा संगीतमें अधिक अभिव्यक्त होती थी या लेखनमें। उन दिनों उसने कुछ सुन्दर निबन्ध और कहानियाँ लिखीं। छुट्टियों भर इस बातपर बहस होती रही कि वह एम० ए० कहाँ 'जॉइन' करे। सुसराल-वालोंके पत्र आते कि बनारस ही सबसे अधिक ठीक रहेगा, और वह कहती कि मैं तो यहीं पढ़ूँगी। एक दिन वह महाशय स्वयं आ धमके लेनेके लिए। इस स्वभावका मैं पहिले नहीं समझता था उन्हें। वे आकर हठ पड़ गये कि लेकर जाऊँगा तो अभी नहीं तो आज अपनी लड़कीको रखिए, फिर मेरे यहाँ भेजनेकी ज़रूरत नहीं है। हम लोगोंने लाख तरह समझाया कि वह बी० ए०में ऐसी अच्छी तरह पास हुई है और उसकी ऐसी उत्कट लालसा है कि आगे पढ़े तो क्यों न पढ़ने दिया जाय। वे बोले, पढ़नेका इंतज़ाम क्या वहाँ नहीं है। बनारस यूनिवर्सिटीमें वह बड़े आरामसे पढ़ सकती है। ख़ैर, वे महाशय उसे लेकर ही टले, बस, वही मेरी और उसकी अन्तिम भेंट थी। एम० ए० वह जॉइन नहीं कर सकी। लिखा, 'यहाँसे आकर इनकी तबियत ख़राब हो गई है। मैं रात-रातभर जागकर भग-वान्से मनाती हूँ, कि ये ठीक हो जायें तो कॉलेज 'जॉइन' करूँ--एडमी-शनकी तारीख़ें निकली जा रही हैं।' लेकिन वह सज्जन तो शायद प्रण करके ही बीमार हुए थे कि दो महीनेसे पहिले ठीक नहीं होंगे। सो वह एडमीशन ले ही नहीं पाई। उसने लिखा, 'भाई साहब, कभी-कभी तो इच्छा होती है पड़ा रहने दूँ बीमार और जाने लगूँ पढ़ने। पर सोचती

हूँ ये लोग मुझे खा जायेंगी ।' इसके बाद और भी, समय-समयपर पत्र आते रहे, उन सबमें जो कुछ लिखा था, उसका तात्पर्य था, 'भाई साहब, मैं क्या करूँ, यह मेरी समझमें नहीं आता। यहाँ कोई काम मुझे करनेको नहीं है, दिन-रात यह बात जोंककी तरह मेरा ख़ून सुखाये देती है कि जिस प्रतिभाकी आप यों तारीफ़ करते नहीं अघाते थे, जिस बुद्धिपर मुझे गर्व था, जिस सौन्दर्यसे मेरी सहेलियाँ ईर्ष्या करती थीं, मेरे जिस संगीतपर बाबूजी झूम आते थे, जिस शैलीपर लोग दाँतों तले उँगली दबाते थे, क्या वह सिर्फ़ इसलिए है कि निरर्गल और व्यर्थकी प्रेमकी बातोंमें भुला दी जाय ? वे समझते हैं कि अधिक-से-अधिक प्रेम-प्रदर्शनसे वे मुझे प्रसन्न कर रहे हैं, दिन-रात, तुम परी हो, तुम अप्सरा हो, तुम यह हो, तुम वह हो और मैं तुमपर भौंरे, परवाने और पपीहेकी तरह मरता हूँ। सच कहती हूँ भाई साहब, इन बातोंमें मेरा मन नहीं लगता। हाँ मैं सुन्दर हूँ—तुम मरते हो, फिर ? लेकिन वे हैं कि दफ़्तर जायेंगे—जो घरसे एक मील है—तो चार खर्रे भरकर प्रेमपत्र लिख भेजेंगे, जैसे न जाने कितने वर्षोंके वियोगमें जल रहे हैं। उसमें सैकड़ों सिनेमाके गीत लिखे होते हैं, तक़दीर कोसी गई होती है, दुनियाको लानत दी जाती है कि भाग्यका खेल है, दुनियाने हमें यों अलग कर दिया है, वह हमारा मिलन यों नहीं सह सकती। पता नहीं वह दुनिया कहाँ रहती है ? अब आप ही बताइये इन मूर्खतापूर्ण बातोंसे क्या फ़ायदा ? कोई कहाँतक अपनेको इन बेवक़ूफ़ियोंमें उलझाये रखे।' और भाभी, नलिनीका अन्तिम पत्र तो बड़ा ही करुणापूर्ण है। लिखा है, 'मेरे चारों ओर भीषण अन्धकारकी एक अभेद्य चादर आकर खड़ी हो गई है, भाई साहब, मैं तब कितनी रोई-चीख़ी थी कि मुझे इस अन्धकारके गर्तमें मत धकेलो, मैं वहाँ मर जाऊँगी ! इस अन्धकारके ख़ूनी पंजोंने मेरी अभिलाषाओं और उच्चाकांक्षाओंकी गर्दनें मरोड़ दी हैं, और अब मैं इतनी अशक्त हो गई हूँ कि छटपटा भी नहीं सकती। खाने-पीने और प्रेमकी इन झूठी-सच्ची बातोंके बाद बचे हुए समयमें

कभी शॉपिंग करने, घूमने या सिनेमा जाने या दिन-भर औरतोंकी इस-उसकी बुराई-भलाई करनेवाली बातोंमें अपनी ज़िन्दगीको बाँध देनेमें मैं अपने आपको बिल्कुल असमर्थ पा रही हूँ। इन दिनों यह मानसिक भर्त्सना मुझे खाये जा रही है। भाई साहब, मैं क्या करूँ? मैं मानती हूँ, हज़ारों लड़कियोंको यही चरम और परम सुख है, पतिका अन्धाधुन्ध प्यार, सोने और चाँदीसे भरा घरबार, और निश्चिन्त दिन। लेकिन इतने दिन मैंने जो भी पढ़ा, जो कुछ भी सीखा, जो आज भी मै समझती हूँ, लाखों लड़कियोंसे अच्छा था, क्या केवल इसीलिए था कि यहाँ आकर सड़ जाय? यहाँ करने बैठूँ भी तो ज़्यादा-से-ज़्यादा खाना बना लूँ, चौका-बर्तन कर लूँ। हो सकता है इन बातोंमें मेरा सारा समय लग जाया करे—लेकिन बस? इसी लिए मैंने उस देव-दुर्लभ प्रतिभाको संजोया था? भाई साहब, ये शादी करनेवाले लड़कियोंके यहाँ जाकर पूछते हैं—तुम्हारी लड़की गाना-बजाना जानती है, क़सीदाकारी जानती है, मिठाई बनाना जानती है?—उस समय उनकी इच्छा होती है, कि संसार-का कोई काम क्यों बच जाय जिसे यह लड़की न जानती हो? लेकिन कोई इनसे पूछे, विवाहके फेरोंके बाद सिवा चौके-चूल्हेके कौनसी कला-कारी लड़कीके काम आती है। कोई मुझसे पूछे, मेरी सारी किताबोंको कीड़े खाये जा रहे हैं। पढ़नेके प्रति किसीमें रुचि नहीं है। यों शौक़ सभीको है कि लड़कीके सामने एजूकेटेड शब्द लगा सकें। वैसे सभीको पाउडर, लिपस्टिक और बुनाइयोंकी बातें करनी उससे अधिक आवश्यक लगती हैं। बुनाई इसलिए नहीं कि कला है, बल्कि इसलिए कि फ़ैशन है, इसीलिए कोई नई बुनाई देखी सब उसकी नक़ल करेंगी, नया ब्लाउज़, साड़ी देखी, वैसी ही लायेंगी—बनवायेंगी। नये कटका गहना देखा, खटसे पहला टूट रहा है नया बन रहा है, रोज़ चीज़ें टूटती हैं, रोज़ बनती है। किसी-किसीको तो शायद एक बार भी नहीं पहना जाता, और टूटकर नया बन जाता है, क्योंकि वह पहिलेसे अधिक सुन्दर है। और यह

क्रम कभी ख़तम नहीं होता। मेरे वायलिन और सितारमें मनों धूल भर गई है। महादेवी और मीराके गीत मैं यहाँ गाकर सुनाऊँ तो सब उल्लुओं-की तरह मेरा मुँह देखें। बात-बातमें इनकी इज़्ज़तका ध्यान, बात-बातमें स्त्री होनेकी घोषणा। यह ऊँचे घरोंकी बातें हैं। नीचे घरोंको भी देखती हूँ, जहाँ चूल्हे-चौकेसे ही फ़ुर्सत नहीं मिलती। सच भाई साहब, आज हृदयमें बड़ी प्रचंड शक्तिसे यह भाव उठ रहा है कि काश, मैं एक साधारण लड़की होती—मूर्ख और भेड़, जिसके बचपनकी सारी तैयारियाँ, शिक्षा-दीक्षा केवल विवाहके लिए होती हैं, और विवाह होनेके बाद जैसे इन सारे झंझटोंसे छुटकारा मिलता है। इस सबके लिए शायद सबसे अधिक दोषी आप हैं। आपने ही मेरी महत्वाकांक्षाओंको उभाड़ कर इतना बढ़ा दिया था कि तू यों करेगी, यों करेगी! आपने ही मेरे दिमाग़में भर दिया था कि मैं असाधारण प्रतिभाशालिनी हूँ, और आपने ही अपने कन्धोंपर चढ़ाकर इतना ऊँचा उठा दिया था कि आज जब ये लोग मुझे फिर उस कीचड़में घसीट रहे हैं, तो टूट जाना चाहती हूँ, बिखर जाना चाहती हूँ, मर जाना चाहती हूँ, पर नीचे नहीं आ पाती। अब बताइये मैं क्या करूँ? कैसे मर जाऊँ? मैं कबतक यों छटपटाती रहूँ? भाई साहब, मुझे कोई रास्ता बताइये, बताइये न! केवल विवाह करके यों इन चारदीवारियोंमें सड़ जानेके लिए शायद मैं नहीं जनमी थी, मुझे और कुछ करना था—मुझे कुछ और करना था!'

"ख़ैर भाभीजी, यह उसका अन्तिम पत्र था, फिर तो उसका तार ही आया।"

यह सब बोलनेमें सुधीन्द्र भाईका स्वर न जाने कितनी बार गीला हुआ, कितनी बार भर्राया, पर इस बार तो जैसे वह बोल ही नहीं पाये। गलेमें कफ़-सा अटक गया, उसे खाँसकर साफ़ किया फिर थोड़ी देर चुप रहे। पापा बुद्ध भगवान्की मूर्तिको धीरे-धीरे पृथ्वीपर ठोक-ठोककर खेल रहा था, एक बार हमने उस ओर देखा, पर जैसे भाव-शून्य होकर। सब उत्सुकतासे सुधीन्द्र भाईकी ओर ही देख रहे थे।

"मैं जब वहाँ गया तो पता चला कि वह अस्पतालमें है", संयत होकर सुधीन्द्र भाईने कहना आरम्भ किया।

"अस्पताल ?" प्रायः सभी चौंके।

"हाँ।" उन्होंने कहा, "उसके सारे घरवाले स्तब्धसे थे। अस्पताल गया—देखा उसका सारा शरीर फफोलोंसे भरा था या जलकर काला हो गया था। वह मर चुकी थी, उसने मिट्टीका तेल छिड़ककर आग लगा ली थी।"

"हैं!" जैसे किसीने बड़ी भारी काँसेके घंटेमें समस्त शक्तिसे हथौड़ा दे मारा—सारा वातावरण झनझनाकर थर्रा उठा।

उसी समय पापाने बुद्ध भगवान्‌की मूर्तिको ज़ोरसे पृथ्वीपर पटक दिया। खन-खन करते हुए सुन्दर खिलौनेके चमकदार टुकड़े इधर-उधर बिखर गये....

हम सब मन्त्र-जड़ित थे।

घंटेकी झनझनाहट गूँज बनकर डूबती जा रही थी।

कुतिया

बड़े भैया न जाने कहाँसे उसे उठा लाये थे। बड़ा सुन्दर पिल्ला था—मोटा-सा। गदबदे शरीरका, बड़े-बड़े बाल, सुनहला रंग। अजीब आकर्षण उसमें था कि देखो तो लेनेकी इच्छा होती और आँखें तृप्त हो जातीं। अपने छोटे-छोटे पैरोंसे जब वह इधर-उधर चलता तो बच्चे कुतूहलसे उसे देखते। और एक जब आवेशमें उसे उठाकर छातीसे चिपका लेता तो दूसरा खींचा-तानी करता, झगड़ता। वह कुतिया थी। घर-भरका एक खिलौना। जो आता उसकी तारीफ़ करता। दिन-भर उसे कुछ-न-कुछ खिलाया-पिलाया जाता और उसका पेट फटनेकी सीमातक फूला-सा लगता। कभी कोई बच्चा अकेलेमें उससे बात करता। कभी बच्चोंकी तरह थपकी देकर उसे सुलाया जाता—मैं चाहता कि मैं जब पढ़ूँ-लिखूँ तो वह मेरी मेज़ या गोदीमें बैठी रहे।

और वह पिल्ला कुछ बड़ा हुआ।

बाल उसके कम होने लगे और शरीरकी सुडौल गठनके स्थानपर एक पतली लम्बूतरी देशी कुतियाकी सूरत उसमेंसे बाहर निकलने लगी। दिन-भर गोद या हाथोंमें रहनेके कारण पांव उसके टेढ़े (पंगे) हो गये थे, और वह निहायत सुस्त आलसी थी—दिनभर मुँह झुकाये पड़ी रहती, क्योंकि खाना उसे बिना श्रमके मिल जाता था। बच्चोंका प्यार कम हो गया।

कुछ और दिन बीतनेपर हमने देखा कुतिया साधारण बाज़ारू कुतियों जैसी हो गई है, उसकी आँखोंसे कीचड़दार पानी बहता है, जहाँ मक्खियाँ भन-भनाया करती हैं। कानोंमें कलीले भरे रहते हैं। अब उसके खाज भी होनी शुरू हो गई थी।

उसके प्रति सारा स्नेह और प्यार ग़ायब हो चुका था और बच्चोंको निषेध कर दिया गया कि वे उसे ज़रा भी न छुएँ।

खाज बढ़ी और सारे शरीरमें फैल गई।

बच्चोंको न लग जाय या इसका कोई और प्रभाव न पड़े इसलिए हमें विवश होकर इक्केमें बाँधकर उसे शहरके एक दूसरे हिस्सेमें छोड़ आना पड़ा कि वह उधर आ ही न सके।

बहुत दिन बीत गये।

आज अचानक मुझे उधरसे गुज़रनेका मौक़ा मिला। एक कुतिया आकर मेरे पैरोंसे लिपट गई, बार-बार मेरे पैरोंको सूँघती और दुहरी होकर पूँछ हिलाते हुए कूँ-कूँ करती। मैंने पहिचाना वही कुतिया थी। अब वह बहुत बड़ी हो गई थी और शायद गर्भिणी थी। खाज उसकी अब भी वैसी ही थी। घृणासे मैंने बचना चाहा और बेंतसे परे हटाकर चलने लगा। लेकिन वह नहीं मानी, लिपटी-लिपटी चलने लगी। मैंने डाँटा, मारनेके लिए बेंत भी हिलाया पर वह गई नहीं। हारकर दो तीन बेंत उसकी पीठपर जड़ दिये, क्योंकि मुझे अब उससे तनिक भी मोह नहीं रह गया था।

टाँगोंके बीचमें पूँछ दबाये "क्योंऽऽक्योंऽऽ" चीखती वह एक तरफ़ हट गई और सड़कके किनारे बैठी एक स्त्रीके पास खड़ी होकर अपलक मुझे देखने लगी। मुझे लगा उसकी आँखोंमें पत्थरको भी पिघला देनेवाली शक्ति है। वह मूक पशु ! दिल भर आया और खड़ा उसे देखता रहा ! वह कभी हमारे यहाँ रही थी और प्यारकी भाजन थी। काश ! वह बोल पाती।

स्त्रीकी पीठ मेरी ओर थी, शायद वह कोई भिखारिन थी लेकिन युवती थी––कुतियाने उसे सूँघा और मेरी ओर देखती पूँछ हिलाती रही। बड़े प्यारसे स्त्रीने कुतियाके ऊपर हाथ फेरा। हाथका रंग गोरा था। हरी चूड़ियाँ। सड़क पार सामने दूकानपर बैठे लालाको संबोधन करके

उसने कड़ककर रोती हुई आवाज़में कहा—"जाड़े-धूप-लूमें मैं यहीं सड़कर मर जाऊँगी—पर जाऊँगी नहीं। ईश्वर तुझे देखेगा तेरे शरीरमें कीड़े पड़ेंगे। पहिले मीठी-मीठी बातें करके घरसे—माँ-बापके यहाँसे भगा लाया। आठ दस साल मौज उड़ाई और अब छोड़ दिया, जवान थी तो तेरे यहाँ रही—बता अब मैं कहाँ जाऊँ। मेरा घरबार सब छुड़ा दिया। कोठा लेके बैठूँगी तो भी तेरे सामने ही बैठूँगी। बड़ा सेठ बना है.... नास जायगा नास....।"

खजैली कुतियाकी पीठपर मुँह रखकर वह फूट-फूटकर रो पड़ी। सिरकी धूल भरी उलझी लटें कुतियाकी पीठपर बिखर गईं—शायद वे कभी सुन्दर रही हों....

नास्तिक

"पुजारीजी, चलेंगे नहीं, आरतीका समय हो गया है।" नीराने शलवारके पायचोंको घुटनों तक उठा लिया, फिर सीढ़ीपर खड़ी होकर एक पैरसे पानी लेकर दूसरेको रगड़ने लगी ! लहरें लेती हुई गंगा बही जा रही है, सीढ़ियोंको चूमती-सी। नीराकी गोरी पिंडलियोंपर अस्तोन्मुख सूर्यकी स्वर्णाभ रश्मियाँ खेल रही हैं।

"चलो तुम !" मैंने अन्यमनस्कसे स्वरसे कहा। सूरजका पीलापन लहरोंमें झूल रहा है—सामने लम्बा पुल है, इठलाता-सा, उसके पीछे ऊँचे पहाड़—दूर तक धुँधले। हवा बन्द सी है। आकाश पर लौटे हुए दो चार पंछी चहचहा उठते हैं—मेरे पीछे कोलाहल बढ़ रहा है—हरकी पैड़ीका पुण्य लूटने मुमुक्षुओं और साधुओंकी टोलियाँ आ रही हैं—गंगा जीकी आरतीका समय है। गंगा तरल पारेकी तरह काँपती हैं। सीढ़ियों पर बैठा हुआ मैं कुछ भावुक-सा हो उठा हूँ। मेरे पैर लहरोंमें—शीतसे खेलते हैं, विचार उठते हैं—जैसे लहरें....।

"चलो ना !" और यह नीरा मुँह हाथ धोकर दुपट्टेसे मुँह पोंछती हुई मेरे पास आकर खड़ी हो गई है।

'क्या सोचते हो तुम दो तीन दिनसे ?' और नीरा मेरे कन्धेपर हाथ रखकर चुपकेसे मेरे बग़लमें सटकर बैठ गई, धीरेसे अपने पंजे उसने पानीमें डाल दिये हैं। मेरे कन्धेसे सिर टिकाकर वह स्वयं भी कुछ सोचने लगी है। यह नारी मुझसे सटकर बैठी हुई है, पीछे अगणित आँखें शायद कौतूहलपूर्ण उत्सुकतासे मुझे घूर रही होंगी—मेरा शरीर रोमांचित होना चाहिये, एक मधुर कम्पनसे मेरी शिराएँ तने तारोंकी भाँति काँप लरज उठनी चाहिये; पर नहीं मेरे अन्दर कुछ नहीं हो रहा—हृदयमें

मेरे दुर्दम्य प्यारका ज्वार फूटकर भर रहा है—दुर्निवार स्नेहकी धारा। पर लगता है, हरद्वारके महान् कोलाहलपूर्ण घाट पर न बैठकर मैं कहीं एकान्तमें बैठा हूं—अखंड निस्तब्धताका राज्य अपनी समस्त पूर्णतासे प्रसारित हो उठा है। अन्धकार शनैः शनैः आकाशके कोनोंसे उतरता है।

यह नीरा? न जाने क्यों मुझे इससे इतना स्नेह हो उठा है,—इन तीन दिनोंमें। जैसे मैं इससे बहुत दिनोंसे परिचित हूँ और केवल मेरे आश्रयके लिए—मुझे इस सत्यका ज्ञान करनेके लिए ही वह अपनी आयुके वर्षपर वर्ष फाँदती चली आ रही है।

नीरा कहती है मैं दो-तीन दिनसे सोचने बहुत लगा हूँ; सोचना? हाँ मैं सोचता हूँ, क्योंकि नीराने मुझे झटका दिया है, इतना सबल कि मैं अपनेको सँभाल नहीं पा रहा हूँ। मेरी सारी मान्यताएँ, आस्थाएँ काँपती हैं, डगमगाती हैं! नीराने मुझे प्रेरणा दी है कि मैं सोचूँ—मैं सोचूँगा, खूब सोचूँगा, मुझे सोचने दो।

और क्यों न सोचूँ, आजतक जड़ पत्थरकी भाँति जीवनको घसीटता लाया हूँ—सोच नहीं पाया कहाँ, कैसे, क्यों? अब जब विचारोंमें उत्तेजना हो उठी है, मानसमें प्रबल आलोड़न हो उठा है तो मुझे विचार कर लेने दो। दिनभर कुछ भी करनेको मेरे पास नहीं रहता, केवल खिड़कीसे पाँव अड़ाकर बैठ जाता हूँ, घाटको देखता हूं, या आनेवाले आदमियोंको, स्त्रियोंकी सूरतें, अद्भुत व्यापार मुझे यहाँ दिखाई देते हैं। खिड़कीके सामने ही वह द्वीप-सा है जिसे हरकी पैड़ीसे दो चौड़े पुल मिलाते हैं—उसपर घाट बने हैं, बीचमें क्लॉक टावर है। हरकी पैड़ी और इस द्वीपके बीचमें केवल एक तालाब-सा रह गया है। यहीं बैठा मैं बस देखा करता हूँ, श्रद्धा-विह्वल भक्ति-गद्-गद यात्री किस प्रकार दूरसे गंगाजीको प्रणाम करते हैं, आदर और संकोचके साथ अपना पैर पानीमें डालते हैं, और फिर किस प्रकार सँभल-सँभलकर वह नहाते हैं। जैसे यह गंगाजल

नहीं दूध हो--गुलाब-जल हो। और फिर कैसी आतुर डुबकियाँ वे लोग लगाते हैं जैसे एक-एक डुबकीमें समस्त जीवनकी कमाई वसूल हो रही हो--उस पानीको कोई उनसे छीने ले जा रहा हो--शायद फिर यह मिल न सकेगा, कभी नहीं। "पुजारीजी, मुझे इन बातोंपर विश्वास नहीं होता।" एक दिन नीराने बड़े दृढ़, आत्मविश्वासयुक्त स्वरमें कहा था। किंचित् भी झिझक उसकी वाणीमें नहीं थी कि कैसी बात वह गंगाके पुजारीसे कह रही है। अवसादकी कालिमा उसकी मुद्राओंमें साकार हो गई थी, मुझे लगा बड़ी कठिनाईसे वह अपने आँसू रोक पा रही है--यह भूखी नारी, स्नेह प्यार और वात्सल्यकी भूखी।

"चलो पुजारीजी। कोई बुलाने आता होगा।" सोच्छ्वास नीराने जैसे मेरे कानमें कहा--कुछ क्षणोंमें यह प्रगाढ़ अन्धकार धरतीपर उतर आयेगा और यह नाम रूपात्मक जगत् पहेली बना-सा मनुष्यके भाग्यपर हँसेगा—बुद्धिको चुनौती देगा।

विश्वास?—जी, हाँ मेरा विश्वास भी इन बातोंमें कभी प्रबद्ध नहीं हो पाया। जब मै देखता हूँ आँखोंके ये अन्धे कभी डरते-काँपते-से अकेले या जोड़ेसे डुबकी मारते होते हैं, या हरे दोनेमें फूल-पत्ती लिये वे श्रद्धांजलि चढ़ाते हैं, तो न जाने क्यों मुझे इनकी वज्रमूर्खतापर हँसी आती है। तीर्थ-पुरोहित और पंडे, जब इन्हें पानीमें खड़ा करके मरणासन्न बछियाकी पूँछ इनके हाथोंमें पकड़ाकर उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि यह उन्हें वैतरणीके पार इस प्रकार डाल देगी, जैसे यह गाय नहीं मगर हो! फूलोंका दोना हाथमें थमाकर जब वे प्रत्येक साँसमें 'समर्पयामि नमः'को 'सवा रुपयामी नमः' कहकर मोक्षकामीसे कई सवा रुपये झटक लेते हैं, तो जैसे स्वर्गके फाटककी छोटी खिड़की व्यक्तिगत रूपसे इनके लिए खुल जाती हो! तो क्या वहाँ भी पगड़ी चलती है? गंगाके किनारे हवन होते हैं, कभी-कभी मैं इनके ऊपर सोचने लगता हूँ यह रुपयेकी, धनकी, समयकी बर्बादी—केवल इसलिए कि भविष्यमें, परलोकमें सुख मिलेगा—

स्वर्ग। ये बड़े-बड़े सेठ, नेता, अफ़सर—सब यहाँ यही रिश्वत देने आते हैं, कि यहाँकी भाँति परलोकमें भी उनके लिए अच्छा-से-अच्छा स्थान रिज़र्व हो। हमारे सामने जो कुछ है उससे भी अधिक अच्छा, सुन्दर स्थान पानेकी वासना—तृष्णा! हे भगवन, कैसी माया है यह सब? क्या इनका यह व्यसन—रिश्वत देने और लेनेका—कभी इस जन्ममें छूट पाएगा?

मन्दिरकी खिड़कीमें बैठा मैं देखता रहता हूँ, बड़े-बड़े छातोंका तम्बू-सा डाले हुए पण्डित किस प्रकार चन्दन लगाते हैं, वहाँ पर बैठने-वालोंसे चलते समय पैसे ले लेते हैं, किराया, उस पवित्र स्थानपर बैठनेका! ये लोग मालिक हैं न, इन धर्म-स्थानोंके। ख़ैर, इतनी ही है कि किराया लेते समय ये लोग लड़ते नहीं। मथुराके तगड़े चौबे तो मैंने देखा, डंडा लेकर बाँह चढ़ाकर चढ़ आते हैं—"दो रुपया माताजी, तुम्हें देने ही होंगे", और कभी ख़ुशामदसे कहते हैं—'भक्त, दो-चार सेर लड्डू तो हम बिना साँस लिये खा जाएँ, पाँच सेर खिलाके भी देख लो, जो ज़रा भी रुकें!' किन्तु ये लोग केवल अठन्नियों पर सन्तोष कर लेते हैं और ख़ाली समयमें बैठे ताकते रहते हैं, कौन किस प्रकार नहाता है! और स्त्रियाँ जब घाटपर बैठीं नहा रही या डुबकियाँ लगा रही होती हैं तो वासनाकी ऐसी लाल लपटोंकी झलक मैंने इनकी आँखोंमें देखी है, कि मेरा मस्तिष्क झन्ना गया है। और यही क्यों, यहाँ आनेवाला प्रत्येक पुरुष, आँख बचाकर या निर्लज्ज होकर यौवनकी इस उद्दाम नग्न गंगाको ही लालायित दृष्टिसे देखता है। कभी-कभी मैं सहानुभूतिपूर्वक सोचता हूँ, ये लोग क्यों देखते हैं, स्त्रियोंका शरीर आख़िर है क्या? और मैंने स्वयं उन स्त्रियोंकी ओर देखा है। वे महीन कपड़ा पहिने हुए उतरती हैं, हिचकतीसी, ठंडे पानीसे सिहरती-सी, फिर ऐसी डुबकी लगाती हैं—ऐसी डुबकी लगाती हैं कि बस। और उस समय महीन कपड़ा! जैसे पारदर्शी शीशा बन जाता है, एक-एक रोआँ मस्सा स्पष्ट देख लो—कभी-

कभी भ्रम हो जाता है क्या वे दिगम्बर वेशमें तो नहीं नहा रहीं--घृणा, ग्लानि, क्षोभ और वितृष्णाकी एक ऐसी उबकाई-सी उठती है, फिर उधर देखा नहीं जाता ! क्या धर्मका यही उद्देश्य है ! स्त्रियाँ जान-बूझकर इसलिए आती हैं--छिः छिः और घृणाकी एक फुरहरी-सी मेरे सारे तनको झकझोर गई है !

"पुजारीजी, अँधेरा घना हो गया है, भीड़ बढ़ रही है।" नीराने मेरे कन्धेको सहसा चौंककर झकझोर दिया है।

इस अँधेरे और आरतीकी ओर अवज्ञाका भाव दिखाकर मैं केवल थोड़ी-सी गर्दन घुमाकर उस ओर देखता हूँ। अरे, नीराकी आँखोंमें आँसू हैं ! और मेरा हृदय मसलकर रह गया है।

यह नीरा ? कितनी व्यथा अपने अन्दर यह छिपाये हुए है, शायद उसका एक कण भी मुझे भस्मीभूत कर देता। पर नीरा, तू उन दहकते अंगारोंको हृदयमें समेटे, जब मुखपर एक करुण मुस्कानकी रेखा खींचती है, तो मुझे लगता है जैसे उत्तप्त सलाखसे कोई मेरे मर्म-स्थलको छेद रहा है। कैसे यह अनजान नारी अप्रत्याशित रूपसे मेरे जीवनसे उलझ गई कि मुझे लगता है, मैं सब कुछ जानता हूँ--इसके अणु-अणुसे मैं परिचित हूँ। और इसने बिना जाने-बूझे अपने सारे विश्वासको मेरे ऊपर क्यों आधारित कर दिया है ! क्या यह नहीं जानती है कि मै विश्वासघात भी कर सकता हूँ। ओ नारी ! मैं पुजारी हूँ, धर्मका ठेकेदार हूँ, धर्म मेरा कवच है, मैं सब कुछ कर सकता हूँ--सब कुछ करते देखता हूँ, सब कुछ किया है ! फिर यह तेरा भोला विश्वास ! उस दिन जब मन्दिरमें कोई नहीं था, यह नीरा न जाने कहाँसे झपटती-सी आकर मन्दिरकी देहलीपर सिर रखकर फूट पड़ी थी, फिर दोनों हाथोंसे मुंह ढाँपे मूर्तिके पास बिखर गई।

"माई, पीछे हट जाओ।" मैंने कहा, न जाने हृदयमें कैसा-कैसा होने लगा।

वह नहीं हटी, दोबारा कहनेका मेरा साहस न हो रहा था। वह बिलख-बिलखकर रोती रही। मुझे लगा मेरे अन्दर भी कुछ पिघलकर बहनेको आतुर हो उठा है। यह एक नवीन बात आज क्यों हो रही है। इस अपरिचित नारीका रुदन मुझे विचलित किये देता है?

"जाओ, माताजी! यहाँ क्यों रो रही हो?" बड़े उच्छ्वसितसे स्वरमें मैंने कहा।

थोड़ी देर पश्चात् उसने मुँह उठाकर मेरी ओर देखा—"कहाँ जाऊँ पुजारीजी, मुझे जगह बताओ!" उसकी आँखोंमें लाली और अन्तस्तल तकके सिरेतक घुस जानेवाली दृष्टि थी।

"क्यों, यहाँ कहाँ आई हो?" मैं मन्दिरके जँगलेमें चौखटसे पैर अड़ाकर बैठा था—"कहाँसे आई हो?"

वह दृढ़ हो गई, उठी, और फिर जॅगलेके पास फ़र्शपर आकर ही बैठ गई; गिर पड़ी, "मेरठ ज़िलेसे आई हूँ।"

'कहाँ?' मैंने उसकी ओर देखा, वह बिलकुल मेरे पास बैठी थी। "गंगाजीकी गोदमें!" दृढ़ आत्मविश्वाससे उसके ओठ हिले, "पुजारीजी, मेरे भाग्यके तारे गंगाकी गोदमें सो गये। अब मैं आई हूँ।"

मैंने नीचे गर्दन झुकाकर देखा, बीस-बाईस वर्षकी आयु, गोरा और सुन्दर मुख, अवसादकी उसके ऊपर अपरिहार्य मुहर। आकर्षक लाल सूजी हुई आँखें, रह-रहकर फड़क उठनेवाले ओठ और उस सबके ऊपर एक धूमिल और सरल अभिव्यंजना। मेरे अन्दर धूपबत्तीके धुएँकी भाँति बल खाता-सा कुछ उमड़ने लगा। यह अस्वाभाविक उद्विग्नता आज मुझे क्यों अपने अन्दर अनुभव हो रही है? ओंठको दाँतसे भींचकर सुन्दर घाटसे पार पुल और पर्वतकी ओर देखते हुए मैंने कहा—'तुम्हारी कामना पूर्ण होगी माई।' उस समय मैं ध्यान नहीं दे सका कि स्त्रीकी किस कामना-पूर्तिके लिए मैं कह रहा हूँ।

उसने विस्मयसे मेरी ओर कुछ देखा, फिर धीरेसे हँस दी, "पुजारीजी, मैं बहुत दुखी हूँ।"

"तुम ? तुम्हें क्या दुख है माँ ?" एकदम चौंककर मैंने कहा, और जब अपनी शुभकामनापर मेरा ध्यान आ गया तो मैं संकुचित हो उठा, शीघ्रतासे हड़बड़ाकर बोला—"तुम्हारा क्या नाम है ?"

"नीरा", बहुत संक्षिप्त उसने कहा। फिर एकदम वह गम्भीर हो गई।

"यहाँ कहाँ आई हो ?" अन्यमनस्क-सा प्रश्न मैंने किया।

"कहीं नहीं, घरसे निकाल दिया है—बेघर हूँ !" उसकी वाणी जैसे विह्वल हो गई, फँसे हुए गलेसे बोली—'पुजारीजी, मारकर और पीटकर मुझे घरसे निकाल दिया है।

"क्यों ?" आजतक किसी युवा-स्त्रीसे मैंने ऐसी बातें नहीं कीं। इतना मैं बोल नहीं पाता, लजाता हूँ, पर अब न जाने कौन बेझिझक मुझसे सब बातें पुछवाये जा रहा था।

"क्यों ?" बड़ी गहरी साँस उसने ली,—"क्योंकि मै स्त्री हूँ, धर्मकी चक्कीने मुझे पीस दिया है।" फिर थोड़ी देरतक वह चुप रही, फिर धीरे-धीरे अन्तरके न जाने किस गह्वरसे उसने बोलना आरम्भ किया—"पन्द्रह वर्षकी आयुमें मेरा विवाह हुआ, न जाने कितनी आकाँक्षाएँ लेकर मैं आई थी; किन्तु दो वर्षतक उचित-अनुचित सब कुछ करनेपर भी मेरे कोई सन्तान न हुई, 'उनकी' माँने गंगाकी मानता मनाई, "हे गंगामाई ! पुत्र तुझे भेंट दूँगी।" ढाई वर्ष फिर बीत गये, और तब कहीं जाकर एक पुत्र हुआ। तुम्हें क्या बताऊँ पुजारीजी, कैसा चाँदका टुकड़ा-सा वह था, पर 'माताजी'ने बताया कि गंगाजीकी महिमाका वह फल है। मैंने उनकी बातको निर्विवाद स्वीकार कर लिया, पर जब गंगाकी भेंट चढ़ानेकी बात आई तो मेरी छाती काँप उठी। पर मेरा वहाँ क्या था ? एक बड़े पर्वपर हम लोग सब गढ़मुक्तेश्वर गये। बहुत पूजा-पाठके पश्चात् गंगामें कुछ

गहरेमें 'उन्हें' खड़ा कर दिया, 'उन'की गोदमें मुन्ना था, कैसे सुनहरी बाल, कोमल शरीर। पुजारीजी, गंगाका पानी बड़ा ठंडा था, कुछ दूरपर तीर्थ-पुरोहित खड़ा हो गया, फिर पुरोहितने उनसे मुन्नाको गंगामें फेंकनेको कहा, मैं रोने लगी घाटपर; माताजीने एक घुटना मेरी पीठपर मारा, गालियाँ दीं, मुँहमें पल्ला ठूँसे मैं बैठी रही। मुन्नाको उन्होंने उछालकर फेंका, धारपर वह पड़ा, और अदृश्य हो गया। पुरोहित उधर उत्सुक लपकनेके लिए खड़ा था कि जैसे ही वह उछले, वह पकड़ ले! ओह, 'पुजारीजी' वह पल, कितना भयंकर, कितना दुःसह, कितना लम्बा, था। आँखें मेरी फटी जा रही थीं, कि मुन्ना अब उछलता है, अब उछलता है, पर वहाँ कुछ नहीं हुआ--एक पल, दो पल, तीन पल--कुछ भी नहीं! मुझे होश नहीं रहा, एक चीखके साथ मैं अचेत हो गई। फुँकारती हुई गंगाकी लहरें उन दोनोंके बीचसे झपटी जा रही थीं। और वह निस्तब्ध निश्चल खड़े थे। तब गहरी साँस खींचकर पुरोहित सीधा हुआ, "दुख न करो बाबू, गंगाने तुम्हारा पुत्र स्वीकार कर लिया, तुम सौभाग्यवान हो--अब दान-दक्षिणा करो कुछ?" मुझे नहीं मालूम फिर क्या हुआ। घर आये। भीतर उन लोगोंके क्या हो रहा था, वे ही जानें, पर बाहर बड़ा सन्तोष था, गंगाने पुत्र स्वीकार कर लिया है, भगवान् और देगा। उस दिन न जाने कहाँसे आकर विद्रोहकी चिनगारी मेरे भीतर भभक उठी। यह हत्या थी, और जान-बूझकर की गई। एक दुख था जो मेरी सारी नसोंमें समाकर रह गया था। मुझे ज्वर भी आया। कुछ दिनों विक्षिप्त-सी भी रही। पर डेढ़ वर्ष पश्चात् फिर एक पुत्र हुआ। माताजीने बताया कि गंगाजीकी मानता वे फिर माने हुए हैं। मैंने स्पष्ट कह दिया चाहे मैं मर जाऊँ इस बार कहीं नहीं जाऊँगी। बड़ा बवंडर इसपर घरमें उठा, किन्तु 'उनका' उत्साह इस बार अधिक नहीं था, इसलिए नहीं गये, तय हो गया कि मुन्ना जब कुछ बड़ा हो जायेगा, तो इलाहाबाद, बनारस, गढ़-मुक्तेश्वर इत्यादि घूमने चलेंगे। और मुन्ना चार वर्षका हो गया। प्रयागमें

कुम्भ था, हम लोग गये। ओफ़, कितनी भीड़ पुजारीजी। हम लोग सब जगह भीड़में घूमे, नहाये भी। एक दिन लौट रहे थे, सहसा मेरा कलेजा 'धक्'से रह गया--मुन्ना कहाँ है ? मैंने 'उनसे' पूछा वे बोले, 'मैंने अम्माजीको उसका हाथ पकड़ा दिया था। भीड़मेंसे जब वे बाहर आई तो मैंने दौड़कर पूछा, अम्माजी मुन्ना कहाँ है ? मुन्ना ? मैंने तुझे ही तो उँगली पकड़ा दी थी।' ननदने कहा--'हाँ भाभी, तुमने ही तो हाथ पकड़ लिया था।' मुझे लगा अम्मा घूम रही है, ननद घूम रही है वे घूम रहे हैं। और 'खट'से जादूके मन्त्रकी भाँति सारा कुम्भ आकाशमें घूमता हुआ उलटा जा लटका, बड़ी· तेज़ीसे घूमता हुआ ऊपर चढ़ता गया--चढ़ता गया ! छोटा होते-होते एक बिन्दुसा रह गया और वह बिन्दु फिर व्यापक अन्धकार। थोड़ी देर पश्चात् वह अन्धकार 'फर'से उड़ गया और मैंने देखा, उनके होठ क्रोधसे काँप रहे हैं। सारे कुम्भको उन्होंने छान मारा, पर मुन्नाका कहीं पता नहीं लगा ! पहिली बार भी रोकर मैंने ही अशकुन कर दिया था। इसके लिए तुझे कितनी यातनाएँ दी हैं, कितना मारा है !" और नीरा मेरे दोनों पैरोंको बाहोंमें बाँधकर सुबक-सुबककर रो पड़ी।

मैं बड़ी गम्भीरतासे सुनता हुआ सोचने लगा था। बड़े स्नेहसे सिर पर हाथ फेरा, पीठपर थपकी दी--"बहन रो मत !" उमड़ते आसुओंको कंठमें ही रोककर इतना ही कह पाया।

वह अभागिन नारी ! शायद उसे स्नेहका कण भी नहीं मिल पाया था, और भी फूट-फूटकर रो पड़ी--'भैया, मैं उसे गंगाके पूरे किनारोंपर ढूँढ़ूँगी--गंगोत्रीसे लेकर गंगासागर तक !' मैंने उसे धर्मशालामें स्थान दिला दिया है, खाने पीनेकी व्यवस्था कर दी है।

"पुजारीजी, उठोगे नहीं, देखो रात हो गई है !" नीराने मुझे फिर झकझोरा, मैं गहरी साँस लेकर चौंका हूँ--आँखोंके आगेसे सारे फ़िल्मी पटल अदृश्य हो गये हैं, घना अन्धकार चारों ओर छाया है, गंगाकी लहरों-

पर भक्तों द्वारा प्रवाहित दोनोंमें घीके दिये बहे जा रहे हैं——जैसे आकाशमें तारे! पुलके ऊपर घाटके ऊपरकी बिजलियाँ जल उठी हैं पीछे हरकी पैड़ीपर असंख्य कंठोंसे निकला कोलाहल समवेत हो गया है। वह आदमी झपटता हुआ इधर ही आ रहा है। क्या मुझे बुलाने आ रहा है? उँह!

"नीरा, मेरा मन आरती करनेको नहीं करता!" मैंने दृढ़ किन्तु भावुक स्वरमें कहा। मेरा एक हाथ नीराकी पीठपर था——"यह गंगाका साधारण-सा पानी, इसके नामपर इतनी हत्याएँ, इतने जघन्य पाप——अत्याचार——मैं पूछता हूँ, बाढ़ आयेगी तो और नदियोंके अतिरिक्त क्या गंगा, गाँव घर और मनुष्य बहाना छोड़ देगी? नहीं-नहीं नीरा, मैं बहुत दिनोंसे देख रहा हूँ, यह मुझसे नहीं हो सकेगा, नहीं हो सकेगा।"

"नहीं भैया, मेरे लिए इतना मत करो, मत कहो! गंगा माँ है।" अब उसने अपने दोनों हाथ मेरे गलेमें डाल दिये हैं और कन्धेपर झूल गई है। शायद रो रही है। ओ भोली नारी....यह कैसी श्वांस मेरी पसलियोंको फाड़कर बाहर आ रही है।

× × ×

दूसरे दिन सारे हरद्वारमें चर्चा थी हरद्वारके प्रसिद्ध पुजारी सहसा पागल हो गये। कल आरतीके समय वे कुछ उदास और बहके-से थे। जब आरती जलाकर उन्होंने हाथमें ली तो उनके हाथ काँप रहे थे। फिर एकदम उन्होंने ज़ोरसे आरतीको गंगाकी धारामें फेंक दिया और चिल्लाते हुए सीढ़ियोंके ऊपर भागे! "मैं नास्तिक हूँ", "मैं नास्तिक हूँ।"

———

यथार्थवादी कहानी-लेखक

"मेरी अभीतक केवल पाँच कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं, और मेरी पाँचवीं कहानी जिस पत्रिकामें प्रकाशित हुई है उसमें मेरे विषयमें लिखा है : 'नये युगके सबसे अधिक प्रसिद्ध प्रतिभाशाली यथार्थवादी कहानी लेखक'।" कहकर मैंने गर्वसे अपने मित्रोंकी ओर देखा फिर धीरे-धीरे घूँट-घूँट करके चाय पीने लगा।

"तो तुम्हारा हिन्दी साहित्यके विषयमें क्या अनुभव है ?" मेरी बातके प्रति स्वीकृतिका भाव लाकर टोस्ट कुतरते हुए अनन्तने पूछा। यह मेडिकल कालेजका छात्र था।

"अनुभव ? . . . ." मैंने दुहराया, गम्भीर हुआ, फिर प्रत्येक शब्दको स्पष्ट कहा : "मेरा यह अनुभव है कि हिन्दी साहित्यमें प्रतिभा, मौलिकता और अभिव्यंजना-कौशलकी आवश्यकता है। बस आपके सब रास्ते खुले हैं। हिन्दीमें ही क्यों, किसी भी साहित्यमें यही बात है। आकार नहीं प्रकार होना चाहिए। नये प्रयोगोंकी उत्कट लालसा। आप देखेंगे कि आपके मार्गको रोकनेवाला कोई भी नहीं है।" मैंने आत्म-विश्वाससे उसकी ओर देखा, फिर अपनी खिड़कीसे बाहर दीवालोंपर रंगे-पुते घरोंको देखा। अभी रात होनेमें घंटा आध घंटाकी देर है। सारा नगर अभी खंड-खंड आलोककी अखंडित विभामें झलमल-झलमल कर उठेगा।

"तुमने अभीतक कितनी कहानियाँ लिखी हैं ?" मेज़पर ज़ोरसे चायका प्याला रखते हुए सुधीरने पूछा।

उसके स्वरमें उपेक्षा थी, मैंने अनुभव किया। बिना उस ओर ध्यान दिये ही बोला : "अभी बताया न, केवल पाँच ! और पाँचवीं कहानी यह आपके सामने है—हिन्दीकी प्रथम श्रेणीकी पत्रिकामें प्रकाशित।

गुलेरीजीने केवल तीन कहानियाँ लिखीं, पर उनकी वह कहानी जिसने उन्हें अमर बनाया, 'उसने कहा था' थी। और मेरी. . . ." इन लोगोंके समक्ष अपनेको रख देना उचित होगा या नहीं, एक बार मेरे मनमें यह शंका उत्पन्न हुई। पर दूसरे ही क्षण मैं बोल उठा : "मेरी एक कहानी मुझे अमर बना देगी—वह है 'भोरकी आशा'!"

"क्या है, तुम्हारी उस कहानीमें?" किसी उत्तरदायी जजकी मुद्रामें सुधीरने सोफेके हत्थेपर कुहनी रख दी, फिर उसके ऊपर ठोड़ी, फिर मुझे एकटक देखने लगा।

"होगा क्या", अनन्तने कहा : "एक लड़की, और एक लड़का आपसमें मिले, बिछुड़े तो जनमभर रोते रहे, मर गये, आत्महत्या कर ली या मिल गये, जैसा और कहानियोंमें होता है।" अनन्त ज़ोरसे हँस पड़ा, साथमें सुधीर भी।

"जी नहीं", मैंने ज़ोरसे कहा। "मैं वैसी कहानी लिखनेवालोंमें नहीं हूँ। उसमें है आजकी खोखली साम्राज्यवादी, पूँजीवादी व्यवस्थासे मुक्तिके प्रति अडिग और अपराजेय आस्था। जनताका इस रात्रिकी सीमाओंके परे, स्थिर पगोंसे चले आनेवाले उस अरुण विहानमें विश्वास!"

"और इस विश्वासके साधक या वाहक कौन हैं?" सुधीरने कुटिलतासे मुस्कराकर परीक्षककी भाँति पूछा। मुझे लगा जैसे वह मुझे किसी विशेष दिशामें धकेल रहा है।

मैंने कहा : "किसान और मजदूर पढ़ना नहीं जानते। उनके लिए लिखना व्यर्थ है। किसी दिन अपना साहित्य वे स्वयं रचेंगे। हलकी मूठ पकड़कर प्रचंड धूपसे तपकर जो उद्‌गार उनके अन्दरसे पिघलकर फूट पड़ेंगे, वही उनका सच्चा साहित्य होगा। सबसे दयनीय अवस्था आज उस वर्गकी है, जो अर्थकी चक्कीमें बुरी तरह पिस रहा है, धार्मिक अन्धविश्वास जिसकी छातीसे एक भी श्वास नहीं फूटने देता; वंश और कलगत मिथ्यादम्भ जिसकी खोपड़ीमें पुराने गुम्बदमें चिमगादड़ोंकी

तरह दिन-रात चक्कर मारा करते हैं। एक शब्दमें वह वर्ग जिसे धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक विडम्बनाएँ अनवरत पीस रही हैं, फिर अपनी मानसिक कुंठाएँ तो हैं ही! फलतः मेहनतका कोई भी काम करनेमें वह अपनी मानहानि समझता है।" मैंने गर्वसे उन लोगोंकी ओर देखा। मुझे लगा मैं बाल-बाल उनके फन्देसे निकल गया हूँ। चायके तीनों कप मैंने मेज़पर एक स्थानपर रख दिये।

"अरे छोड़ो भी!" सुधीरने उठते हुए कहा। "चलते हो, रोशनी देख आयें।"

"अभी रोशनी कहाँ? चलेंगे, आठ बजे बाद!" मैं बैठा रहा।

"तो भई, हम तो चलते हैं।" खड़े होकर उसने अँगड़ाई ली।

"और अनन्त तुम भी?" मैंने अनन्तकी ओर मुँह किया।

"जाऊँ?" उसने पूछा।

"अच्छा, आठ बजे मैं आजाऊँगा, रोशनी देखनी है, और सैकिंडशो।" सुधीर कमरेके पर्दे हटाता हुआ चला गया। ज़ीनेसे उसके जूतोंकी आवाज़ हमने सुनी।

"तुममें एक बहुत बड़ी दुर्बलता है ध्रुव", अनन्तने उसके जाते ही गम्भीर स्वरमें कहा: "तुम साहित्यको सबसे बड़ा हथियार समझते हो!"

"और साहित्य है भी!" मैं बड़े आत्म-विश्वाससे मुस्कुराया।

"बात तो सुनो पूरी", अनन्तने क्षुब्ध होकर कहा। "जहाँतक मनुष्य-समाज और राष्ट्रके धार्मिक और सांस्कृतिक पक्षकी बात है, मैं मानता हूँ साहित्य सबसे बड़ा हथियार है, किन्तु आर्थिक पक्षका एकमात्र हथियार राजनीति है, उस स्थानपर साहित्य अपनी परिभाषा ही नहीं खोता, वरन् स्तर भी छोड़ देता है।"

"आजकल तो भई, सभी साहित्यके पीछे पड़े हैं। मैं पूछता हूँ क्या मेडीकल कालेजका तेरा सारा कोर्स समाप्त हो गया जो तू इन बातोंमें व्यर्थ ही टाँग अड़ा रहा है?"

मैंने झुँझलाकर कहा : "साहित्यको इतना सीमित क्यों बनाते हो। साहित्य समाजकी सूक्ष्मसे सूक्ष्मतम मनोवृत्तिका प्रतिबिंब होता है।"

"हाँ, लेकिन प्रतिबिंब होना एक बात है और इलाज होना दूसरी।" मानो उसने अकाट्य तर्क दिया।

"मूर्ख !" मैंने कहा : "इलाज और रोग तेरा पीछा कभी नहीं छोड़ेंगे।" मैंने सिगरेटका डिब्बा उठा लिया। बहस करते काफ़ी देर हो गई थी। सिगरेट निकाली। एक उसे दी। जलाई।

"इन सब बातोंका अर्थ यह मत लगाना, मैं तुम्हारी कहानी-कलामें सन्देह प्रकट कर रहा हूँ।" सिगरेट जलाकर उसने सोफेपर पीठ टेक दी।

मैं मुस्कुराया––विजयसे। "आखिर आये न वहीं !"

तभी सामनेवाले कमरेके किवाड़ खोलकर भिक्कूने झाँका। यह हमारा नौकर था।

"क्या है ?" मैंने एकदम पूछा।

"भैयाजी, उमा बाबूके यहाँ आपको बुलाया है।"

"मुझे ? कौन उमा बाबू ?" मैं चौंककर सीधा बैठ गया।

"इस गलीवाले नुक्कड़पर। बाज़ारसे मैं मोमबत्ती लेने जा रहा था, तभी उन्होंने बुलाकर कहा : 'अपने ध्रुव भैयाको भेज दो'।"

"काम नहीं पूछा ?" बात अभी मेरी समझमें नहीं आई थी।

"सिर्फ़ भेज देनेको कहा।" और वह जाने लगा।

"अच्छा, तू प्लेट और कप ले जा, ज़रा फूलदान, मेज़ कुर्सी ठीकसे लगा दे, कोई आये जाये", मैंने उससे कहा। "आना अनन्त, ज़रा पूछ आयें।"

अनन्त चुपचाप सिगरेट पीता हुआ कमरेसे बाहर आया, ज़ीनेसे उतरा। नीचे आकर बोला : "तुम उन्हें जानते नहीं हो ?"

"नहीं, ज़रा भी नहीं। समझमें नहीं आता क्यों बुलाया है।" चिन्तित स्वरसे मैंने कहा।

"अरे, बुलाया क्यों है, दीवाली है, चारों ओर लोग आनन्द मना रहे हैं, दीये जलेंगे अभी। बाज़ार चहक रहा है, सोचा होगा, मिल लें। कमसे कम पड़ोसीके नाते ही सही। लेकिन यह आश्चर्य है, तुम उन्हें जानते नहीं। अच्छे पड़ोसी हो भाई!"

"यहाँ मैं रहता भी बहुत कम हूँ, फिर भी अपने कामसे काम रखता हूँ। लेकिन समझमें नहीं आता बुलाया क्यों है।" बाई ओर मुड़कर गलीमें आये। अन्धकार बढ़ने लगा था, लेकिन अभी बत्तियाँ नहीं जली थीं। बीस पच्चीस क़दम चलकर खेलते हुए एक बालकसे पूछा : "उमा बाबू कहाँ रहते है?" उसने थोड़ी दूर संकेत किया, बन्द, हरे किवाड़ोंकी ओर।

हम दोनों उस द्वारके सामने जाकर खड़े हो गये। मुझे आश्चर्य हुआ। उमा बाबू इसमें कबसे रहने लगे? जब मैं बहुत छोटा था तो इसमें खेलने आया करता था। एक विधवाका मेरे बराबरका ही लड़का था। बहुत स्नेह मानती थी वह हमसे। धीरे-धीरे उसकी स्मृतियाँ साकार हो उठीं। लेकिन जहाँतक मुझे याद है यह मकान तो बहुत छोटा है। एक दालान, एक कमरा, और एक कोठरी। बस। थोड़ी देर हम लोग वहाँ खड़े रहे। बड़ी झेंप लग रही थी इस प्रकार खड़े-खड़े। आवाज़ देनेमें झिझक-सी मालूम होती थी। सोचा, किसी आने-जानेवालेसे ही कहें। पर कोई दिखाई ही नहीं देता था। वह बच्चा भी न जाने किधर चला गया था। एक बार सिर उठाकर उस मकानको देखा। इधर-उधर दुमंज़िली, तिमंज़िली हवेलियाँ, केवल वह घर ही एक मंज़िलका था।

अनन्त विचारमग्न-सा सिगरेटकी अन्त्येष्टि कर रहा था। एक बार सिर उठाकर बोला : "उमा बाबूने अपना मकान पुतवाया भी नहीं है।"

इस बार मैंने भी ध्यानसे देखा। आसपासके मकान पुते हुए थे।

केवल वही मकान सभ्योंकी पंक्तिमें घुसे हुए अनधिकारी गँवारकी भाँति झाँक रहा था। बड़े भिंचेसे कण्ठसे पुकारा : "उमा बाबू !"

अन्दरसे साँकल बजी। किवाड़ोंमें दरार हुई। किसीने कहा : "भीतर आ जाइये।" स्वर कोमल, सरस, मधुर और हृदयस्पर्शी था। किसी कोकिलकंठका। उस स्वरमें और क्या था, मैं नहीं समझ पाया। किवाड़ खुल गये। आगे-आगे मैं, पीछे अनन्त आगे बढ़ा।

कमरेमें सबसे पहले स्टूलपर रखी छोटी-सी लालटेन दिखलाई दी। उसीके प्रकाशमें इधर-उधर देखा। छोटा-सा कोठरीनुमाँ लम्बा-सा कमरा और लालटेनवाले स्टूलके पास ही एक खाट बिछी हुई थी। मैली रज़ाईसे ओढ़े उसपर कोई लेटा हुआ था, सो रहा था, हमारे जानेपर भी नहीं हिला। स्टूलके पास ही एक टूटी कुर्सी रखी थी। उसपर एक छोटा-सा काँचका गिलास और शीशी रखी थी। शायद सोनेवाला बीमार था। उस खाटसे थोड़ा हटकर जो द्वार भीतर दालानमें गया था वह स्त्री उसीमें चली गई थी। मैंने चारों ओर देखा। कमरेकी सफ़ेदी पुरानी होकर मटमैली हो गई थी। खाटसे थोड़ा हटकर एक ढीले जोड़वाली कुर्सी पड़ी थी। उसके बराबर घिसे-घिसाये, एक ओरको झुके-से दो मोढ़े। लालटेन अभी साफ़ की गई लगती थी, क्योंकि उसमें साफ़ करनेकी धारियाँ स्पष्ट थीं। खाटके ऊपर 'सुख संचारक कम्पनी'का तीन वर्ष पुराना कैलेण्डर टँगा था। ऐसा लगता था जैसे कमरेमें चीज़ें कम हैं। एक विचित्र सूनापन उस विचित्र छोटे संकीर्ण कमरेमें व्याप्त था। उस स्थानपर ज्योंके त्यों हम खड़े रहे। सामने दीवालपर छततक हमारी परछाइयाँ खड़ी थीं।

तभी द्वारमें वह स्त्री आई, वहाँ चौखटसे लगकर खड़ी हो गई। बोली : "आप लोग बैठ जाइये।" उच्चारण और स्वरकी स्पष्टतासे लगा कि वह शिक्षिता है।

मोढ़े खींचकर हम लोग बैठ गये। मेरा मोढ़ा एक ओर झुककर

गिरनेको हुआ, पर मैंने सँभाल लिया। उत्सुकतासे कान उधर ही लगे हुए थे। आते समय तो मैं उसे देख नहीं पाया था, अब अनुमान लगाया कि शायद वह युवती ही थी।

एक बार वह खाँसी, गला साफ़ करके, पहले फटे-से, बादमें संयत स्वरमें कहा : "आज सुबहसे ही इनकी तबीयत अधिक ख़राब हो गई है। अब तो दोपहरसे ही न बोलते हैं, न हिलते हैं, न डुलते हैं।"

ध्यानसे सुना, फिर इधर-उधर देखा। अब कुछ-कुछ बात समझमें आ रही थी। अचानक पूछ लिया : "क्या हो गया है इन्हें ?"

"डाक्टरने बताया कि टायफ़ाइड हो गया है। कुछ दिन पहलेतक ख़ुद किसी न किसी तरह पासवाले डाक्टरके पास घसिटकर पहुँच जाते थे। पर डेढ़ महीना हो गया, पीछा ही नहीं छोड़ रहा यह बुख़ार।" मुझे लगा उसका स्वर धीरे-धीरे पिघलने लगा।

"क्यों और कोई नहीं है ? पास-पड़ोसवाले किसीसे दवा मँगा लेतीं।" मैंने कहा।

"किसे फ़ुर्सत है इधर-उधर देखनेकी। अछूत है हम लोग तो।" शब्दोंपर ज़ोर देकर उसने कहा। मुझे लगा तीव्र कटु व्यंग उन शब्दोंमें झनझना रहा था।

"अछूत ?" मैंने दुहराया। एक बार सारे क़मरेको फिर देखा, विश्वास नहीं हुआ।

"हाँ, यहाँ हम अछूत ही समझे जाते है। मैं बाल विधवा हूँ। हम लोगोंने समाजसे विद्रोह करके विवाह किया है। यहाँ आ गये एक डेढ़ वर्षसे, पर समाजके अभिशापकी यह परछाई हमारे साथ हमेशा लगी है। मेरी तो कोई बात नहीं, यह बेचारे घरवालोंकी सहानुभूतिसे ही वंचित नहीं हुए, उत्तराधिकार भी छिन गया। उन लोगोंको क्या मालूम नहीं होगा, डेढ़ महीनेसे बीमार हैं ! नौकरी छूट गई है। पर कौन क्या

कहे।" उसका स्वर फिर आर्द्र हो आया था। "यहाँ हमारी सहायता करना साँपोंको दूध पिलाना है, हमने धर्मके प्रति विद्रोह किया है। समाज-की व्यवस्थाके प्रति अविश्वास किया है न! इसलिए अछूत हैं!" और वह विद्रूपसे हँसी। मुझे तत्काल अनुभव हुआ, कितनी विषाक्त उसकी हँसी थी।

"सुना था, आप कहानी-लेखक हैं, एक कहानी भी पढ़ी।" कुछ रुककर कहा: "आपकी सहानुभूति विस्तृत है, आप विश्व-बन्धु हैं, इसीलिए बुलानेका साहस कर लिया।"

मैं धीरेसे हँसा, जैसे लजा गया होऊँ। मुझे लगा अनन्तकी आँखोंमें आँसू आ गये। छिः भावुक, दुर्बल हृदय! उसने धीरेसे आस्तीनसे पोंछ लिये। मैं इस प्रकार अकेला रोने वाला नहीं हूँ। मैं इसपर संसारको रुलाऊँगा। अनन्तने धीरेसे मोढ़ा खींचकर खाटके बराबर कर लिया। निश्चेष्ट लेटे रोगीकी कलाई पकड़ी, नब्ज़ देखी, और सहसा चिहुंक पड़ा। फिर धीरे-धीरे गम्भीर होने लगा।

"जबतक होशमें थे, कराहते रहे कि पसलियोंमें दर्द होता है।" फिर किवाड़ोंसे आवाज़ आई।

"तो आपने सेका नहीं?" इस बार अनन्तने पूछा।

"न"!

"तो ज़रा एक अँगीठी जला लाइये।" अनन्तने कहा।

मैंने देखा, उधर चौखटसे लगी वह नारी ज्योंकी त्यों खड़ी रही। आश्चर्य हुआ। धीरे-धीरे देखनेपर मालूम हुआ रो रही है।

"अरे आप रोती हैं! इसमें रोने और घबरानेकी कोई बात नहीं। सब ठीक हो जायगा।" अनन्तने कहा। सान्त्वना देते-देते उसका कंठ स्वयं काँप उठा।

कुछ क्षण चुप रही, फिर बोली: "घबरा तो नहीं रही हूँ, आपके सामने निकलते लज्जा होती है!"

"अरे, हम लोग तो आपके छोटे भाई है, ऐसी बात आपको सोचनी भी नहीं चाहिए", मैंने कहा। यह सब क्या हो रहा है, क्या होनेको है, समझमें नही आ रहा था।

"सेकनेकी बात मैं स्वयं सोच रही थी। अँगीठी तैयार है, अभी लाती हूँ।" फिर वह चली गई।

उसके जाते ही अनन्तने बड़ी गहरी साँस ली। मुझे लगा, साँसके साथ आँसू भी उसकी आँखोंमें उमड़ आये हैं। बोला: "बहुत देर हो चुकी है।"

"क्या मतलव ?" इस बार वास्तवमें मैं चौंका।

"यह उमा बाबू बच नहीं सकते !" ध्यानसे उसने उनके माथेपर हाथ रखा, धड़कन देखी। फिर बोला : "आध घंटा, केवल आध घंटेकी मेहमानी है।" फिर उसने बड़ी गहरी साँस छोड़ी : "टायफाइडके साथ निमोनिया है।"

"ओफ़ !" मेरे मुँहसे निकल गया।

तभी द्वारपर आहट हुई। हम लोग सचेत हुए। दोनों हाथोंमें अँगीठी पकड़े वह आती दिखाई दी। जलते कोयलोंके दहकते प्रकाशमें उसका मुखमंडल प्रदीप्त हो रहा था। गेहुआँ रंग, सीधी-सुती नाक, प्राय: सुन्दर पूर्ण-युवामुद्रा। पतले ओठ कसकर बन्द किये हुए। एक अस्वाभाविक किन्तु अभेद्य दृढ़तासे व्याप्त सारा मुख। बाल अस्त-व्यस्त और पीछे बिखरे हुए। एक बार उसे सम्पूर्ण देखनेकी इच्छा हुई। स्थिर और संयत पगोंसे उसने अँगीठी लाकर अनन्तके मोढ़ेसे थोड़ी दूरपर रख दी। इस बीचमें मैंने देखा, उसका नीचेका ओठ बहुत दावनेपर भी रह-रहकर काँप जाता था, जिसे उसने ज़ोरसे दाँतोंसे दबा लिया था। अँगीठी रखकर वह सीधी हुई। मैंने देखा और न जाने क्यों एक बार सारा शरीर रोमांचित हो उठा। न जाने कितने स्थानोंसे फटी थिगली लगी बड़ी मैली-सी धोती जिससे वह अपने शरीरके सभी अंगोंको ढँक लेना चाहती थी। केवल

एक बाडिस्। नीचे पेटीकोट भी नहीं। धोती इतनी अधिक फटी हुई कि स्थान-स्थानसे उसका अंग दिखाई देता था।

"कपड़े नहीं हैं, इसलिए निकलनेमें लज्जा होती थी", इस बार बड़े आत्मविश्वाससे उसने कहा। फिर सिरहाने खड़ी हो गई, इसलिए कि अनन्त कुछ कहे और वह ला दे।

मेरा ध्यान गया। हाथोंमें केवल दो काँचकी चूड़ियाँ थीं, नाकमें सींक। और ऊपरसे नीचे एक छल्लातक मुझे दिखाई नहीं दिया। मैं अन्धविश्वासी तनिक भी नहीं हूँ, पर उस समय सहसा उजड़े उपवनकी कल्पना अपनी विभीषिकासे मुझे कँपा गई।

"बाहर निकलकर मेहनत-मजूरी करूँ तो फिर इन्हें सँभाले कौन! फिर. . .फिर कभी किया भी नहीं।" इस बार फिर जैसे उसकी दृढ़ता विचलित हो उठी। थोड़ी देर यों ही ऊपरकी साँस ऊपर और नीचेकी नीचे साधे रही, फिर जैसे किसी चीज़को निगल गई। मैं उसकी प्रत्येक भंगिमाको देख रहा था।

अनन्त झुककर एकटक रोगीकी ओर देखता रहा, न जाने क्या सोचता हुआ। रह-रहकर उसकी आँखोंमें हल्का जल आ जाता और फिर कोरोंमें जाकर सूख जाता। मैं कभी रोगीके निर्जीवसे शरीरको देखता और कभी उस युवतीको जो शिक्षिता है, कहानियाँ समझती है। उसका मुख कभी जड़ पत्थर-सा भावविहीन हो जाता, कभी-कभी आँखोंके नीचे कुछ सिकुड़नें पड़ जातीं और दो कोरोंसे कातरता झाँकती। तभी मैंने ध्यान दिया, उसके ओठ पपड़ाये हुए हैं और आँखोंके चारों ओर काले घेरे हैं। शायद कई रातोंसे वह जागी है। ध्यानसे देखनेपर मैंने स्वीकार किया, लड़की सुन्दर है। न जाने उस बेचारीके हृदयपर क्या बीत रही होगी। शायद उसे ध्यान भी नहीं है कि आज दीवाली है। केवल झाँक लेने भरसे मालूम हो जायगा कि सारा नगर कैसी प्रकाश और उल्लासकी तरंगोंमें झूल रहा है। अभी यदि वह रोगी मर जाता है तो कोई सहारा,

कोई आश्रय, कोई आशा, इस बेचारीको नहीं है। क्या करेगी? मूर्ख, नाकमें सींक लगा ली है कि छेद बन्द न हो जाय, शायद कभी सोनेकी लौंग पहिननेको मिले!

बड़े झिकते और संकुचित कंठसे अनन्त बोला: "थोड़ी रुई है, पुरानी, आपके पास?"

वह चुपचाप चली गई।

"दुनियामें मनुष्य होना शायद सबसे बड़ा पाप है।" अनन्तने तात्त्विक दार्शनिककी मुद्रामें कहा।

मैं सहसा उठ खड़ा हुआ।

अनन्तने प्रश्न-मुद्रासे मेरी ओर देखा।

"अनन्त, मैं इसे सह नहीं सकता। आज जो कुछ देखा है उसे अमर बनाने जा रहा हूँ। वैभव-प्रमत्त वर्गको बताऊँगा कि तुम्हारे यह सुरभित अट्टहास इन सिसकते हुए जीवोंके प्रति व्यंग हैं, उपहास हैं! मैं जाकर कहानी लिखूँगा", मैंने कहा और द्वारकी ओर मुड़ने लगा।

"अरे इस समय..." अनन्त एकदम चौंका।

"नहीं...नहीं, तुम रोको मत। मैं अपने उद्गारोंको अधिक दबा नहीं सकता। इस समय मुझे कोई दैवी स्फुरण अपने अन्दर अनुभव हो रहा है। मैं इस करुण दृश्यको छोड़ नहीं सकता। और यदि मैंने अब नहीं लिखा तो समझ लो, साहित्यकी एक अनुपमेय कहानी रह जायगी। मैं फिर नहीं लिख सकता।" और फिर मैं यह कहता हुआ बाहर आ गया: "तुम तो हो ही, आवश्यकता हो तो बुला लेना।"

मैं गली में आ गया।

"अरे भले आदमी, कहानी पीछे ही लिख लेते, कुछ सहायता करो मेरी!" मैंने सुना शायद पीछेसे कोई कह रहा था, पर मैंने ध्यान नहीं दिया। सोचने लगा, कैसे इन सबकी कहानीको एक सुगठित 'प्लाट' में बैठाया जाय!

आज-कलके लड़के

[१]

एक दिन था।

पिताजीके मरनेका तार आया। मैं स्तम्भित रह गया, विश्वास नहीं कर सका। शहरमें ही रहकर मैं मैट्रिककी पढ़ाई कर रहा था। छमाही परीक्षाएँ हो चुकी थीं। अब वार्षिककी तैयारी थी। पिताजी क़स्बेमें मवेशीख़ानेके मुन्शी थे, यहाँ एक बहुत छोटी-सी कोठरी ले रक्खी थी। छुट्टियोंमें घर जाकर कुछ खाने-पीनेका सामान ले आया करता था, स्वयं बनाता और पढ़ता। इसी प्रकार लस्टम-पस्टम काम चल रहा था और अब ? अब मैं क्या करूँ, मैं समझ नहीं सका। खाना खाकर स्कूल जानेकी तैयारी कर रहा था। हाथकी किताबें छूटकर पृथ्वीपर जा गिरीं और मैं खाटपर इतने ज़ोरसे गिर पड़ा कि उसके सारे पाये-पट्टी मचमचा उठे। मेरे घरकी क्या अवस्था है मैं जानता हूँ, अब क्या होगा ? कैसे चलेगी मेरी पढ़ाई ? और १५ वर्षकी मेरी बहन अरुणा ? क्या सचमुच पिताजी इस संसारमें नहीं हैं ? मेरे अन्दरसे एक आवाज़ आ रही थी "छिः तू कैसा निष्ठुर है ? तेरे पिताजी मर गये हैं और तेरी आँखोंमें एक आँसू नहीं ?" कोशिश करके भी मैं रो नहीं पा रहा था। मेरी वे सारी महत्त्वाकांक्षाएँ ! बड़ी देरतक मैं यों ही निश्चल जड़-सा पड़ा रहा, फिर ज़ोरसे साँस खींचकर उठ बैठा, इतने ज़ोरसे मैंने शायद ही कभी जीवनमें साँस ली हो।

उसी दिन सन्ध्याको मैं घर आ पहुँचा। मुझे मालूम नहीं हो रहा था कि मैं क्या कर रहा हूँ, मेरे आसपास चारों ओर आख़िर हो क्या रहा है ? द्वारपर ही मेरी बहन खड़ी थी। देखते ही मैं फूट-फूटकर रो पड़ा, अचानक उससे लिपट गया।

तीन दिनतक घरकी क्या अवस्था रही मैं नहीं कह सकता। घरकी

किसी कोठरीमें जाता तो लगता देखूँ घड़ेके पीछे पिताजी तो नहीं बैठे हैं पर तभी जैसे कोई डाँट देता 'हिश् क्या बेवक़ूफ़ी जैसी बातें कर रहा है,' आँखोंमें आँसू भर आते। या तो मुझे लगता पिताजीकी आत्मा मेरे चारों तरफ़ सारे वातावरणमें परिव्याप्त हो गई है या लगता जैसे सारी ठोस वस्तुओंका घनत्व कोई निकाल ले गया है, महाशून्य चारों तरफ़ फैल गया है। मेरे घरकी ईट-ईट खोखली हो गई है। सारा घर रोता था किन्तु मुझे खुलकर रुलाई ही नहीं आती थी। चुपचाप रहूँ और अपने अन्तरसे उठनेवाले हर भ्रमके ज्वारमें अपनेको बहनेके लिए मुक्त कर दूँ, जिस भी किसी वस्तुमें देखता तो मुझे लगता यह एक दिन ढह जायेगी, नष्ट हो जायेगी। कोई भी हँसता खेलता रोता मनुष्य देखकर लगता यह ऐसा क्यों कर रहा है? इसे नहीं मालूम एक दिन चितापर रखकर जला दिया जायेगा।

और तीसरे दिन मेरे शहरमें रहनेवाले चचेरे भाईने मुझे बुलाया। अम्मा भी वहाँ बैठी थीं। सबकी सूरतें गम्भीर और ग़मगीन थीं। मैं स्वयं भी चुप था। मैं अम्माके पास खाटपर बैठ गया। भैया एक टूटे-से मूढ़ेपर बैठे थे। थोड़ी देरतक सब चुप रहे।

"देखो, अब तुम बच्चे नहीं रहे हो।" भैयाने मुझसे कोमलतासे कहा, "सब समझते हो आगे कैसे होगा?"

मुझे नहीं मालूम था कि मैं बड़ा हो गया हूँ और सब समझने भी लगा हूँ, अत्यधिक संकुचित हो उठा। धीरेसे कह दिया, "जैसा आप चाहें।"

"आख़िर तुम भी तो कुछ चाहते होगे।" उन्होंने एक बार अम्माकी ओर देखा—"तुम्हारे इम्तहानके तीन महीने रह गये हैं, मेरा तबादला भी इसी शहरमें हो गया है सो मैट्रिकका इम्तहान तो दे लो, इसके बाद कहीं लगा देंगे!!"

मैंने सिर हिला दिया। चाहता भी यही था।

"क्यों चाची, ठीक है न तीन-चार महीने तो तुम दोनों माँ-बेटी जैसे-तैसे काट लो यहीं, फिर यह कहीं लग ही जायेगा।" सहानुभूतिसे उन्होंने कहा फिर मुँहपर अधिक स्निग्धता लाकर बोले "तुम्हें भी मैं साथ ही ले चलता पर क्या करूँ जगह नई है, मकान-अकानकी कितनी दिक़्क़तें हैं आज-कल शहरोंमें, यह तो तुम जानती ही होगी। सुनती रहती होगी फिर यहाँ भी तो सँभालना है।"

माँका अत्यधिक गम्भीर मुख धीरेसे हिला और इसके पश्चात् अन्य बहुत-सी बातें होती रहीं। कुछ पिताजीकी प्रशंसामें थीं जिन्हें सुनकर माँ फूट-फूटकर रो उठी थीं। कुछ प्रबन्ध इत्यादि शहरोंकी कठिनाइयोंमेंसे थीं। अन्तमें भैया उठते हुए बोले "अच्छा चाची, तो यह वहीं रहेगा कोई बात है ही नहीं, सब एक ही है। तुम्हें भी भाई नवल, ख़ूब ध्यानसे पढ़ना है। और कौन है, तुम सब समझते ही हो।" और भैयाने बड़ी गहरी साँस खींची, इनके पिताजीसे हमारे पिताजीकी लड़ाई थी। पर वे हम सबसे ख़ूब बोलते थे। इस समय जब मेरी आँखोंके आगे बिजलीकी क्षणिक चमक-सी यह बात आई और चली गई कि अब तो अपने घरमें सबका उत्तर-दायित्व मुझपर ही है तो मैं ऊपरसे नीचेतक जैसे सिहर उठा, मेरी आँखें भर आईं, मेरी इच्छा हुई भैयाकी भाँति मैं भी बड़ी गहरी साँस खींच लूँ।

मैं शहरमें आ गया था। भाभीका वात्सल्य पाकर मैं विभोर हो उठा। पहिले दिन वे मुझे अपने पास बिठाकर बड़ी देर अम्मा आदिके विषयमें पूछती रहीं। पिताजीकी बातें करते समय वे रो पड़तीं। फिर मुझे भविष्यमें उत्तरदायित्व निभानेका उपदेश दिया, भैयाका सबसे बड़ा लड़का बनारस विश्वविद्यालयमें पढ़ता था और शेष दोनों लड़के लड़की यहीं थे। तो उस दिन दो घंटेतक बातें करते रहे, भाभीसे मिले बहुत दिन हो गये थे। मिलकर प्रसन्नता हुई और उस समय तो मैं गद्‌गद हो उठा जब उन्होंने कहा कि दूसरे-तीसरे दिन याद करके वे भैयासे मुझे कमसे कम एक दिन-

को ही हो जानेका अनुरोध कर लेती थीं। उस दिन जब मैं सोने गया तो शोककी वह प्रगाढ़ छाया जो मेरे मस्तिष्कपर सारे धुँधलेपनसे छाई हुई थी विलीन हो चुकी थी, मेरा हृदय हल्का और स्वस्थ था। रातको देरतक मैं कल्पनाके जाल बुनता रहा कि इस स्नेह-शीतल वात्सल्यकी छायामें मैं परीक्षाके यह तीन महीने काट लूँगा फिर स्वावलम्बी बनकर सुयोग्य पुत्रकी भाँति माँकी सेवा करूँगा। अरुणाकी शादी भी तो मुझे ही करनी है, सब करूँगा। इसी प्रकार मैं धीरेसे कब सो गया मुझे पता नहीं।

प्रातःकाल उठा। भैयाने मुझे मकानका एक छोटासा कमरा या कोठरी बता दी। कहा इसमें तुम अपना सामान रखो, यहीं रहो, कोई चीज़ इधर-उधर पड़ी दिखाई नहीं दे। और वह कमरा मैंने अपने लिए ठीक किया। नहा-धोकर मैं पुस्तक खोलकर बैठ गया, तभी भाभी एक प्लेटमें हलुआ और कपमें चाय ले आईं, स्निग्ध स्वरमें बोलीं। "ले भैया, नाश्ता कर ले" इनकी उम्र चालीस सालके लगभग थी।

मैं एकदम उठकर खड़ा हो गया, संकोचसे गड़ा-सा जाता हुआ। "अरे आप ये क्यों ले आई बेकार? मुझे वहीं बुला लेतीं"।

"उहूँ, क्या हुआ। अब आप वहाँपर जाते, मेरा क्या घिस गया?" उन्होंने कहा फिर तेजीसे कमरेसे चली गईं। "खाना बना लूँ, तुम लोगोंको स्कूल भी तो जाना है।"

मैं उन्हें नाश्तेमें सहयोग देनेके लिए बुलाता ही रह गया, नाश्ता करनेके पश्चात् जूठे बर्तन मैं स्वयं ही रख आया कि उन्हें लेने आनेको भाभीको फिर तंग होना पड़ेगा। उस दिन खाना खाकर मैं गया तो अपनेको अत्यधिक भाग्यशाली समझता था। पहिले मैं जिस स्थानपर खाना खाता था उसकी और इस खानेकी तुलना करनेपर मेरा मन घृणासे भर गया। छि: कैसी दाल, कैसी रोटी....और यह....कोई तुलना नहीं। इसकी तुलनामें मैं वास्तवमें वहाँ पशुओंका ही खाना खाता था। वहाँ गिनतीकी

दो रोटियाँ रखकर ढेरके ढेर चावल रख दिये जाते। मुझे शुरूसे चावल खानेमें उबकाई-सी आती है किन्तु अकालका समय, राशनसे मिलनेवाला खाना जैसा भी मिले उसे खाओ या भूखे रहो। उस कठिनाईको मैं ही जानता हूँ कैसे पानी पीकर चावलोंके एक-एक कौरको मै पेटमें पहुँचाता था, और यहाँ ? . . . .

उस दिन मै अपनी कोठरीसे कामकी आवश्यक वस्तुएँ निकाल लाया। उसे बिल्कुल ख़ाली कर देनेकी मेरी इच्छा थी पर उसका इम्तहान तकका किराया मैं अग्रिम दे चुका था उसे कोठरीवाला किसी भाँति लौटानेको तैयार न हुआ, अतः कुछ व्यर्थकी वस्तुएँ उसीमें छोड़कर मै ताला लगाकर भैयाके पास आया। अब मैंने निश्चय कर लिया कि यह वातावरण मेरे पूर्णतया अनुकूल है। मुझे अपना सारा ध्यान अब पढ़नेकी ओर लगा देना चाहिये। रात-दिन मेहनत करके मैं परीक्षामें अच्छासे अच्छा स्थान पानेकी कोशिश करूँगा।

दूसरे दिन भाभीने मुझे नाश्ता करनेके लिए रसोई ही में बुला भेजा। ताज़ा नमकीन ख़स्ता परावँठा और चाय उस दिनका नाश्ता था, आजका खाना कलसे सादा था।

तीसरे दिन मैं प्रतीक्षा कर रहा था कि नाश्ता करने शायद भाभी बुलाएँगी पर जब बहुत देर हो गई, मुझे भूख लगी तो बड़ा हिचकता झिझकता मैं स्वयं रसोईमें पहुँचा। मुझे देखते ही भाभी बोली "जबसे तुम्हें नाश्तेको बुला लानेको कह रही हूँ नवल, इस उदयसे लेकिन इसने सुनकर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया, लो, कर लो बेटा।" और उन्होंने सादा परावँठा कटोरदानमेंसे निकालकर रख दिया। चाय ठंडी-सी हो गई थी। मैंने नाश्ता कर लिया। उस दिन खानेको एक साग दाल रोटी थी केवल। सात दिन मुझे यहाँ आये हो चुके थे। आज मैं नाश्ता करने गया तो भाभी बोली। "भैया आज तो मै बना ही नहीं सकी, सुबहसे ही काममें जुटी हूँ, अब तुम स्कूल-वालोंके लिए खाना बना रही हूँ, रातको बना एक परावँठा रखा है, चाहो

तो खा लो। नहीं तो मैं अभी बनाये देती हूँ अभी, उहूँ लकड़ी भी तो. . . . और वे सिर झुकाकर फूँक मारने लगीं। जल्दीसे तश्तरीमें रातका वह परावँठा रख दिया। थोड़ा-सा अचार, और वे खाना बनानेमें जुट पड़ीं, मैंने नाश्ता कर लिया, आज मेरे खानेमें थोड़ेसे चावल रखे गये।

स्कूल जानेवाला था तभी भैयाने पूछा। "क्यों पन्द्रह तारीख़ कल है। फ़ीस लगेगी तुम्हारी, कितनी लगेगी? दे आना।"

"सात रुपया" मैंने कहा,

"तो दे आना सात रुपये तो होंगे ही तुम्हारे पास।" भैयाने कोटके बटन लगाते हुए कहा,

"जी हाँ" मेरे मुँहसे निकल गया, चलते समय चालीस रुपये माताजीने दिये थे उन्हींमेंसे सात रुपये फ़ीसको ले गया।

यहाँ आये हुए मुझे पन्द्रह दिन हो गये, नाश्ता करने स्वयं पहुँचा तो भाभीने कहा "आज तो भैया बचा ही नहीं कुछ। खाना खा लेना अभी बना जाता है" आज चावलोंकी मात्रा खानेमें बढ़ते-बढ़ते बहुत अधिक परिमाणमें आ चुकी थी, आज मुझे खानेके अर्थको पेट भरनेकी व्यंजनामें लेना पड़ा।

सन्ध्याको स्कूलसे पढ़कर आया तो देखा भैया इला, छोटी लड़कीका कान पकड़े हुए बड़े तेज़ स्वरमें डाँट रहे थे। "तुझे मेरे कमरेमें आनेकी ज़रूरत ही क्या थी? चल उधर नवलके कमरेमें, लो जी नवल पढ़ाओ इसे। एक घंटे इन दोनों बदमाशोंको पढ़ा दिया करो, ख़ूब कान ऐंठो इन बदमाशोंके।"

उस दिनसे स्कूलसे आकर मैं एक घंटे उन्हें पढ़ाने लगा।

बीसवाँ या पच्चीसवाँ दिन था मुझे ठीकसे याद नहीं है। मैं स्कूलके समयसे पहिले खाना खाने आया तो देखा, इला और उदयने मुझे देखते ही बड़ी जल्दीसे कोई चीज़ मुँहमें रख ली। उनके हाथोंपर लगी चाश्नी देख-कर मैंने अनुमान लगा लिया मिठाई होगी, ऐसी बातोंपर ध्यान देनेका

मेरा स्वभाव नहीं है, खाना अभी बना नहीं था। मैं आकर बैठ गया था, एक-एक मिनिट स्कूलको देर हो रही थी, मैं इतने दिनोंसे सब देख रहा था। समझ रहा था। भाभीके मुखकी स्निग्धता अदृश्य होती चली जा रही थी, अपनत्वके जिस मधुर सरस, संसारमें मैंने यहाँ आनेपर कल्पनाके कोमल जाल बुने थे मुझे अब वह केवल भ्रम-सा जान पड़ने लगा। मुझे प्रतिक्षण अनुभव होता रहता जैसे मैं इन सबसे पृथक् हूँ और प्रयत्न करनेपर भी अपनेको इनमें मिला नहीं पा रहा हूँ, और मेरा यह पृथक्त्व कुछ बोझिल हो चला है ?·

"लकड़ी भी तो नहीं है" और भाभीने भन्नाकर चकलेपर ज़ोरके वेलन पटका, "इतने दिन पहिलेसे कह दिया था, अब स्कूल वालोंको देर हो रही है, बताओ मैं क्या खुद जल जाऊँ चूल्हेमें, सुबह चार बजेसे उठकर पिलती हूँ रातको बारह बजेतक।" यह बात पासके कमरेमें हजामत बनाते भैयासे कही गई थीं, पर 'स्कूलवालों' कहकर जो प्रच्छन्न व्यंग मेरे ऊपर किया गया था——उसे समझनेमें अधिक कठिनाई नहीं थी।

भैया वहींसे गरजे, "तुम मेरे ऊपर अर्जेंट हुक्म क्यों चलाती हो, पासमें बैठा है नवल, उससे कह दो, लकड़ी भी नहीं ला सकेगा, इतना तो बच्चा नहीं है।"

"ले आऊँगा भैया मैं", मैंने धीरेसे कह दिया।

खाना खाया, बिना चुपड़ी या नामकी चुपड़ी तीन रोटियाँ और शेष चावल, दाल जिसमें पानी अलग दाल अलग और शेष मसाला अलग।

"जल्दीमें हैं भैया। अब तो जैसा है वैसा खा लो", भाभीने रोटी सेंकते हुए व्यस्त स्वरसे कहा।"

जैसे ही उठनेको था भाभी बोली, "नवल, उधर आते वक़्त शामको तरकारी लेता अइयो भइया ज़रा।"

मैंने कहा, "अच्छा"।

आते समय मैं सेम लेता आया भाभीने पूछा, "ले आये। कितनी हैं ?"

"आध सेर।" मैंने कहा,

"पैसे ? . . . . .पैसे तो तुमने दे दिये होंगे, कितने हुए ?"

"आठ आने" मैंने कहा।

"तो फिर दे दूँगी भइया, इस वक़्त हैं नहीं।"

"दे दीजिये, कोई जल्दी नहीं है।"

लकड़ी मैं टालपर मज़दूरके सिरपर लदवा लाया। मज़दूरको देखते ही भाभीने नाक सिकोड़ी। खाटकी पाटीपर पैर रखकर खड़े हुए घुटनेपर कलाई रखकर भैया घड़ी उतार रहे थे उनकी ओर देखकर धीरेसे बोली, "मज़दूर आया है।"

"दिमाग़ हैं लड़के के", भैयाने कहा।

बात मैंने सुन ली, जैसे हृदयके कोमलतम भागपर दहकता हुआ अंगारा रखकर किसीने दबा दिया हो, हृदयके स्तर—स्तरको जलाता हुआ वह घुसा जा रहा हो। पीड़ा, जलन, मचलन, बेचैनी जैसे सभी कुसमुसा-कर रह गई।

"आ गई लकड़ी ?" भाभीका स्वर आश्चर्यजनक रूपसे मृदुल था, "मैं राह ही देख रही थी तुम्हारी, कितनी है ?"

"ढाई रुपयेकी मनभर, चार आने मज़दूरके", मैं और भी अधिक संकु-चित हो गया।

"अच्छा भैया, हाँ, पैसे अपने भैयाजीके पाससे ले जाओ, मेरे पास तो हैं नहीं, और देखो क्या कह रही थी मैं, हाँ ज़रा बैठो यहाँ।"

मैं उनकी खाटपर नीचेकी ओर बैठ गया। "देखो तुम समझते हो घर गिरस्ती है। हमारे यहाँ कोई ख़ज़ाना थोड़े ही गड़ा है।" और बहुत अधिक मुलायम शब्दोंमें उन्होंने कहा। "देखो भैया बुरा तो मानना मत, सौ रुपया तुम्हारे भैयाकी तनख़्वाह है,अब उसमें तुम आठ-आठ दस-दस आनेका साग ले आओगे तो कैसे चलेगा ? कितने दिन चलेगा ?"

मैं सब समझ रहा था, उस दिन अपने कमरेमें जाकर मेरी रुलाई अपने आप बाहर फूट पड़ी, उस दिन मुझे अपनी असहायताका अनुभव हुआ। मैं मना रहा था कोई दैवी वज्र मेरे ऊपर आ गिरे और मेरी गर्दन कटकर दूर जा पड़े। मैं इच्छा कर रहा था--किसी भी प्रकार मैं मर जाऊँ तो शायद इनके ऊपर कुछ प्रभाव पड़े, इन्हें अनुभव तो हो कि एक असहाय बालकके प्रति अधिकसे अधिक निर्मम होनेसे उसके हृदयको कितना दुख पहुँचा, शायद मेरे मर जानेका कारण जानकर इन्हें कुछ पछतावा हो। खानेमें जो 'दुभांत' की जा रही थी उसे मैं देख रहा था, लेकिन मैं चुप रहता। करूँ भी तो क्या, सोचता यों चुपचाप कबतक चलता जायेगा।

और धीरेसे खिसककर साग, भाजी, लकड़ी, मिर्च-मसाले सब बाज़ारसे लानेका काम मेरे ऊपर आ पड़ा। दूसरा महीना प्रारम्भ हो रहा था, सोचा था परिश्रम करके परीक्षामें अच्छासे अच्छा स्थान पानेका प्रयत्न करूँगा। पर सुबह उठता पाँच बजे, नित्य-कर्मसे निवृत होकर कसरत करता और फिर ठंडे पानीसे नहा लेता, मैं चाहता था भाभीके ऊपर मैं कमसे कम अपना बोझा डालूँ। इसके लिए मैं कष्ट सहनेके लिए तैयार था, ठिठुरता हुआ भी ठंडे पानीसे नहा लेता तब पढ़ने बैठता, नाश्ता करने जाना भी छोड़ दिया क्योंकि चार-पाँच बार जानेपर भाभीने बताया कि अब रात-को खाना ही नहीं बचता और उस समय लौटनेमें मैं ग्लानिसे गड़-सा जाता, फिर मैंने जाना ही छोड़ दिया। नहाकर भूख लगती तो ख़ाली पानी पी लेता, जाड़ेमें ठिठुरते हुए बड़ी प्रबल इच्छा होती कि काश, एक कप चाय होती। रसोईमें भैयाके लिए बननेवाली चायके प्याले खनकते हुए मुझे सुनाई देते, पर उधरकी ओर देखने तकका साहस नहीं करता। भाभी अपना एक कप रख लेती थीं। उदय इला भैयाके साथ ही पी लेते थे। मैं अपने पुराने ओवरकोटमें दाँत कटकटाता हुआ ज्योमेट्रीकी कोई थ्यॉरम समझनेका असफल प्रयत्न करता। रोकनेपर भी ध्यान खनकते प्यालोंकी तरफ़ ही चला जाता था। दस बजे जैसे-तैसे निगलकर मैं स्कूल

पहुँच जाता, सन्ध्याको साग-तरकारी, मसाला या बाज़ारका सौदा। एक घंटे उदय या इलाको पढ़ाना, फिर रात हो जाती थी। केवल तीन बोतल मिट्टीका तेल मिलता है उससे मैं पढ़ूँ या घरमें उजाला हो, यह समस्या थी। यह मेरी दिनचर्या थी, दूसरे महीनेका पहिला हफ़्ता मुझे यहाँ आये हो चला था। इसके अतिरिक्त कुछ और नई बातें भी मुझे दिखाई देने लगी थीं।

जब मैं खाना खाने बैठता भाभी बहुधा कहतीं "लो राशन ख़तम हो गया। महीनेमें अभी बारह दिन पड़े हैं कैसे होगा, अभी बीस रुपयेका मँगाया था, पन्द्रह रुपयेके घीमेंसे आधा पाव बचा है, नवल तू झूठ मानेगा। ले देख, न कुछ खाते दिखाई दें न पीते, न जाने किधर चला जाय सब, रुपया जाता दिखाई देवे पर चीज़ आती दिखाई नहीं देती।" फिर धीरेसे हँसकर कहतीं, "तुझसे इतना भी सुख नहीं है कि कभी पन्द्रहवें दिन जाकर शुद्ध घी ले आवे, चाचीजी (अम्मा) बड़े सस्तेमें निपट रही हैं।" दुबारा फिर धीरेसे हँस देती,—जैसे बातके प्रभावको कम कर रही हों!

आप समझते है मै इन सब बातोंका मतलब नहीं जानता, नहीं ऐसी बात नहीं है। मैं सब अनुभव करता देखता और निर्बलके बल राम कहकर चुप हो जाता। अम्माकी बात सोच-सोचकर आज मेरा रोआँ-रोआँ कातर हो उठा, कैसे उनके दिन कटते होंगे? मेरी आँखोंमें आँसू आ गये, इच्छा हो रही थी कंठ फाड़कर स्वतन्त्रतापूर्वक रो लूँ, मेरी छातीपर इतना बोझ, मस्तिष्कमें इतना तनाव आ गया था कि बिना इसके ठीक होता ही नहीं दिखाई देता था।

खाना खाते समय मेरे साथ उदय बैठता था। पेट भरा होने या न जाने किस कारण, जब मैं अपनी भूखको शान्त करता होता तो वह छोटे-छोटे टुकड़े लेकर चबाया करता, खेला करता। एक दिन थोड़ी देर पश्चात् ही भाभी बोली, "क्यों रे उदय, क्या आज तेरे पेटमें कुआँ खुद गया है? खाये चला जा रहा है कबसे। उठनेका नाम नहीं लेता, आख़िर स्कूल

विस्कूल भी जाना है।" रोटीका कौर चबाता हुआ सहसा मेरा मुँह रुक गया, आज यह नई बात थी। बात किससे और क्यों कही गई है इसे मैं समझ गया, मुझे लगा मुझे क़ै हो जायेगी।

"मैं तुमसे नहीं कह रही नवल, कहीं तू अपने ऊपर ले जाये, फिर इन बच्चोंकी तबियत ख़राब हो जाती है तो डाक्टरोंको हमें ही भरना पड़ता है।" मुझे रुकता देखकर भाभीने स्वरमें मार्दव लानेका प्रयत्न किया।

"नहीं" मैंने जैसे-तैसे मुखका कौर निगला। खाना खाकर जैसे ही उठा, भाभीने कहा—"नवल, राशन समाप्त हो गया है स्कूलसे आके ले आना"।

मैंने कहा, 'अच्छा'।

परीक्षाके डेढ़ महीना या एक ही समझो रह गये थे। पढ़नेके नाममें बिल्कुल कोरा था, स्कूलमें मालूम हुआ कि कल टैस्ट है तो जैसे किसीने मेरी दम निकाल ली हो, विश्वास ही नहीं मुझे दृढ़ निश्चय था कि मैं अनिवार्यतः फेल हो जाऊँगा, आज मैंने उदय और इलाको नहीं पढ़ाया। आते ही किताब खोलकर पढ़ना शुरू कर दिया।

भाभीने कहा "ले आया नवल।"

"अभी नहीं भाभी ले आऊँगा अभी", मैंने कहा। भाभी चली गई, पुस्तकोंमें मैं डूब गया। सहसा भाभीकी बड़बड़ाहट सुनी, "खानेके वक्त तो आकर जमके बैठ जायेगा सुबहसे ही राशनको कह रही हूँ तो नहीं लाया जा रहा, बोलो भरनेको कहाँसे दूँगी।" ऊपरसे नीचेतक मैं जैसे सन्नसे रह गया, मेरे पिताजी मवेशीख़ानेमें मुन्शी थे सही, पर मैं बड़े लाड़-प्यारसे पाला गया पुत्र था, गाँवमें मै कभी नहीं रहा। सदा शहरमें और अच्छी प्रकारसे रहता आया हूँ, ऐसे शब्द मैंने शायद जीवनमें पहली बार सुने। जैसे हज़ारों काँटे शरीरमें किसीने घुसा दिये हों, मैं उसी समय उठ गया। जानता था कि रातदिन भैयाके कान भरनेसे उनकी धारणा भी मेरे प्रति काफ़ी ख़राब हो चुकी है। और अब भी भाभी इसीको यत्नशील हैं।

मैंने जाकर राशन-कार्ड माँगा। रुपये और राशन-कार्ड मेरे हाथपर ज़ोरसे रखते हुए उन्होंने कहा "आके फिर गेहूँ पनचक्की पर ले जाना।"

टैस्टका ध्यान छोड़ कर मैंने सब किया। उस दिन जैसे ही मैं चारपाईपर लेटा, मनसे मेरी रुलाई फूट पड़ी, रातभर हिचकियोंके मारे मेरे गलेकी नसें दुखने लगीं, आँखोंमें दर्द होने लगा। आज मेरे पिताजी होते, ये भैया पिताजीके सामने कितना अपनत्व दिखाते थे, भाभी उनके सामने कैसा प्यार करती थीं। मान लो मैं कहीं भाग भी जाऊँ तो ये भैया भाभी अपने कंठकी समस्त शक्ति लगाकर प्रचार करेंगी, उसकी आदतें ही ऐसी थीं। हमारी भी फलानी चीज़ तभीसे ग़ायब है। कल टैस्ट है फ़ेल हो गये कहीं बोर्डके इम्तहानमें, तो निकम्मा कुंदज़हन और न जाने क्या-क्या कहनेको मिलेगा। कहीं वक्रोक्ति द्वारा कुएँ इत्यादिकी समता फिर न दी जावे इस कारण पेट भरके मैं खाना नहीं खाता था, कहीं बोझ न सिद्ध होऊँ इसलिए खानेके सिवा कोई भी काम मैं किसीसे नहीं कहता था, भाभी भैयाको जिसमें आपत्तिकी भावना भी हो, वह काम मैं नहीं करता था। तब भी मेरी छातीपर यह विश्वास कोल्हू-सा जमा बैठा था कि मैं बोझ हूँ। उस दिन रात भर मैं ख़ूब रोया।

दूसरे दिन कोर्सकी पुस्तकें खोलकर बैठा तभी सुनाई दिया, "लो नवाब साहब तो दफ़्तर खोलकर बैठ गये हैं, अब चक्कीसे आटा कौन लायें, अभी हाल छातीपर आ जायेगे कि खाना दो। मैंने किसीको जनम भर खिलानेका ठेका थोड़े ही लिया है। हमें कुछ मतलब नहीं जी, हमारी तरफ़से चाहे जहाँ जाओ।" मैंने सुना पुस्तकें एक ओर फेंक दीं और खड़ा हो गया बहुत सधे संयत पगोंसे भाभीके पास पहुँचा "क्या है भाभी? दृढ़ स्वरसे मैंने पूछा।"

"कुछ नहीं जी, मुझसे मत बोलो इस बखत तुम।"

"क्यों तब भी?" कुछ आप आटा लानेको कह रही थीं चक्कीसे

लेकिन इसके लिए इस तरह चीख़ने और बड़बड़ानेकी क्या आवश्यकता है।" मेरा स्वर अनजाने ही क्रमशः तेज़ हो गया।

"अच्छा तो ऐसे हम किसीसे कुछ कामको ही नहीं कहें, ऐसे तो भैया, साफ़ बात है यहाँ तो गुज़र नहीं हो सकती।" पूरी आँखें फाड़कर पुतलियाँ नचाते हुए भाभीने हाथ मटकाये।

"तो बस मैं भी साफ़ सुनना चाहता था", मैंने उत्तेजनासे कहा।

"क्या है ?" तभी हाथमें अख़बार लिये भैया कमरेसे निकले। दोनों-को घूरते हुए तेज़ कंठसे बोले "क्यों जी, क्या बात है नवल ?"

मेरी आँखें झुक गईं सारी उत्तेजना अब बरस पड़नेको मचल पड़ी। मेरे कंठमें छातीसे उठती हुई रुलाई आ-आकर फँसने लगी।

"इधर आओ।" भैयाने उँगलीसे संकेत किया, आज्ञा दी—"इधर आओ क्या कह रहा हूँ नहीं सुना अच्छा।" और तड़ाक् ! मुझे लगा मेरा सिर अपने स्थानपर घूम गया, आँखोंके आगे तिरमिरे नाच उठे।

"सूअर, बदमाश, पाजी, अभीसे इतना घमंड, बोलनेकी तमीज़ नहीं, निकल जाओ यहाँसे, यहाँ जगह नहीं है, फिर घरमें घुसा तो हन्टरोंके मारे खाल उधेड़ लूँगा।" और उन्होंने मेरी गर्दनको पूरी शक्तिसे भींचकर अपनी सारी ताक़तसे मुझे बाहर धक्का दे दिया।

[२]

एक दिन वह था,
और एक आजका दिन है,

आज मैं राशनिंग में इन्क्वायरीइन्सपेक्टर हूँ। काफ़ी तनख़्वाह मिलती है, दो एक टयूशन हैं, अच्छा बिजली-नलदार मकान है, अम्मा और अरुणा-को मैंने यहीं बुला लिया है, एम० ए०की तैयारी कर रहा हूँ फिर कहीं निश्चित रूपसे प्रोफ़ेसर हो जाऊँगा। हम लोग काफ़ी सुखी हैं; किन्तु पाँच वर्ष पहिलेकी वे बातें मैं प्रयत्न करनेपर भी नहीं भुला पाता, अवकाश पाते ही नाच उठती हैं। और कभी जब मैं उनकी शृंखला मिलानेकी कोशिश

करता हूँ तो आश्चर्य और गर्वसे मेरी साँसें बोझिल हो जाती हैं, क्या मुझ-जैसे भावुक लड़केने ही यह सब किया।

वह दिन मुझे याद है। दिन छिप रहा था और अँधेरा नगरपर छाने लगा था। रातको मृत-स्तब्ध हो जानेके लिए नगरका कोलाहल विशेष रूपसे ऊँचा हो गया था। आज मैं स्कूल नहीं जा सका। अपनी उस मकड़ीके जालों कूड़े और धूलसे भरी अँधेरी कोठरीको खोलकर टूटी खाटपर ज़ोरसे मैं जा पड़ा। आँसूका बाँध मेरी छातीको फोड़कर आँखोंसे बरसने लगा। उस दिन मैंने रुलाईको रोकनेका प्रयत्न नहीं किया। मैंने निश्चित-सा कर लिया, जितना भी मै रो सकूँगा आज ही रो लूँगा। मेरी हार्दिक इच्छा हो रही थी आँखोंसे आँसुओंके स्थानपर ख़ून बहने लगे, मृत्युकी निबिड़ मूर्च्छना मेरे ऊपर आने लगे और धीरेसे चेतना-हीन अवस्थामें ही अनजाने मेरे प्राण निकल जायें। ओह ! कितना अच्छा हो, पन्द्रह मिनिट रो चुकनेके पश्चात् मेरी रुलाई थमने लगी। फिर सोचता मेरे मर जानेपर अम्मा और अरुणाकी क्या हालत होगी, और उस हालतको सोचे बिना मैं पूरे वेगसे फिर रोने लगा। फिर कुछ चुप होकर सोचता अब मैं आगे क्या करूँगा, अनाथ हूँ, पढ़ने रोटी खानेको रुपया कहाँसे आवेगा ? फिर वही दुर्निवार रुलाई, यही क्रम सन्ध्याके पाँच बजेतक चलता रहा। जीवनमें इतना अधिक मै कभी नहीं रोया। बड़े-बड़े अनाथ महापुरुषोंकी जीवनियाँ मेरी आँखोंके सम्मुख आतीं, पर फिर मुझे स्वीकार करना पड़ता कि उनका समय दूसरा होगा। उनके समयमें उदारता, थोड़ी दया ममता अवश्य ही संसारमें होगी।

दिन छिपेके लगभग मैं उठा, सारा मुँह लाल हो रहा था, आँखोंमें जड़ लालिमा जैसे स्थिर हो गई थी। गले और कनपटीकी सारी नसें खिचकर तन गई थीं। आँखोंकी लाल और नीली शिरायें आँखोंमें फूलकर फैल गई थीं। भूखके मारे मेरा सारा शरीर टूटा पड़ रहा था, मेरी इच्छा हो रही थी उस समय किसीकी भी जूठन ही होती।

मैंने अपनी क़मीज़ और नेकर उतारकर रख दी, वहीं एक ओर टँगे धूल भरे फटे-फटाये पुराने छोटे क़मीज़ पाजामेको मैंने पहन लिया। खूँटी नीची होनेके कारण जगह-जगहसे उन्हें चूहोंने भी काट दिया था। कोठरीमें प्रकाश नहीं था। मैं बाहर आया, मुझे मालूम था मेरे सारे शरीर और सिरमें धूल भरी हैं, इसलिए सड़कपर आनेकी मेरी हिम्मत नहीं पड़ रही थी, सोचता था कहीं किसीने देख लिया तो? भूखके मारे मेरे मुंहका सारा रस सूख गया था। मुझे स्पष्ट अनुभव होने लगा कि पेटसे उठकर आगकी लपटों जैसी कोई चीज़ मेरे हृदयको जलाती हुई कंठतक चली जा रही है। पुस्तकोंमें पढ़ी हुई जठराग्निको मैंने तब सत्य जाना।

किधर जा रहा हूँ, खाना प्राप्त करनेका साधन क्या है बिना इन बातोंके विषयमें तनिक भी सोचे निरुद्देश विक्षिप्त-सा चला जा रहा था, जब भी मुझे अनुभव होता कि कोई मुझे देख रहा है तो मैं सिकुड़कर अपनेमें समा जाना चाहता, उस दिन आवारोंकी भाँति मैं रातके साढ़े ग्यारह बजेतक घूमता ही रहा, बाज़ार, गली, सड़क, होटल, रैस्टोरेन्ट, रिफ्रैशमेन्ट हाउस, तन्दूर, भोजनालय, सभीके सामने मैं गया पर लाख इच्छा करते हुए भी किसीसे एक टुकड़ातक न माँग सका। कभी-कभी किसी मिठाईकी दूकानके सामने किसीको आते देखकर मैं सोचता 'अगर मैं इसके हाथसे मिठाईका दोना छीनकर भाग जाऊँ तो वह मुझे पकड़ थोड़े ही सकेगा', दो-एक बार ऐसा करनेका निश्चय भी किया पर पास जाते ही मेरा सारा निश्चय अदृश्य हो जाता। मेरी भूख और भी बढ़ गई थी, अब मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि दूकानसे ही कोई चीज़ उठाकर मैं पूरी शक्तिसे एक ओर भागूँगा। मैं बढ़ा, मिठाइयोंकी थालियाँ क्रमशः सजाकर पहाड़-सा चिने हुए, दूकानदार एक ओर बैठा पैसे गिन रहा था। दूसरी ओरसे भाग जानेका अच्छा मौक़ा था, चुपचाप मैं उसी ओर चला।

"ए लड़के!" तभी किसीने बुलाया। मैं काँप उठा। बक्स रखे हुए

एक सज्जन खड़े थे, सूटेड बूटेड। उन्होंने फिर बुलाया "ए लड़के" इस बार मेरी समझमें आया कि मुझे ही बुलाया जा रहा है। मैं रुका।

"स्टेशन तक ले चलेगा। चल आठ आने देंगे।" उन्होंने बक्सकी ओर संकेत किया, फिर घड़ी देखी।

संकोच और लज्जाका ज्वार मेरे अन्दर फूट पड़ा। मैं खड़ा रह गया।

"चल, जल्दी चल, बारह आने सही। सन्दूक़ ज़्यादा भारी नहीं है।" जल्दी मचाते हुए वे बोले, "खड़ा क्यों है, उठा इसे।"

मैं धीरेसे खिसका, जैसे किसीने धक्का देकर बढ़ाया। मेरे सन्दूक़के पास पहुँचनेसे पहिले ही उन्होंने मेरे उठानेके लिए सन्दूक़को एक ओरसे उठा दिया। अब मैंने धीरेसे उठाकर सन्दूक़ ऊपर रख लिया। मेरे हाथ काँप रहे थे। सन्दूक़ अधिक भारी नहीं था, कठिनाईसे एक मन, तो भी मेरे पैर डगमगा रहे थे। चलते हुए मुझे अनुभव हुआ कि आज जाड़ा तेज़ है और मेरे सारे रोंगटे खड़े हुए जा रहे हैं। मुझे लग रहा था कि पानीकी सतहकी भाँति पृथ्वी अपने स्थानपर हिल रही है। एक-एक पाँव सँभालकर मैं रख रहा था।

स्टेशन पहुँचे। गाड़ी तैयार खड़ी थी। स्टेशनके प्रकाशमें मेरा सारा शरीर जैसे अत्यधिक अव्यवस्थित हो उठा, जैसे प्रकाशकी एक-एक किरण मेरे शरीरमें मृत्यु-किरण बनकर रक्त सोखने लगी। मुझे लगता प्रत्येक आदमी मुझे देख रहा है और उसकी पैनी दृष्टि मेरे शरीरमें घुसी चली जा रही है, इतनी तीव्रतासे कि पीड़ाधिक्यके कारण मै अपने आपको सँभाल नहीं पा रहा था और जब ही मुझे ध्यान आता कि मुझे घूरती हुई दृष्टियोंमें कोई परिचित दृष्टि भी हो सकती है तो जैसे मेरे शरीरका सारा रक्त कोई अदृश्य सत्ता सोख लेती। मैं विवश-सा होने लगता। तीन फ़र्लांगके इस मार्गमें मेरे पैरोंका डगमगाना एक क्षणको भी नहीं रुका। आठ-दस बार मुझे अनुभव हुआ कि मेरे सिरका सन्दूक़ गिर पड़ेगा, मैं ख़ुद गिर पड़ूंगा।

प्लेट-फ़ार्मपर लगी हुई गाड़ीके इन्टर क्लासमें मैंने बक्स लगा दिया। वे सज्जन सीटपर बैठकर सारे डिब्बेका निरीक्षण करने लगे। मैं थोड़ी देर खड़ा रहा, फिर घिसटते-से पगोंसे चल दिया।

"अरे ए लड़के, ओ लड़के तुम्हारे पैसे।" तभी उन्होंने पुकारा, मैं रुक गया, सोचा लौटूँ या नहीं। कठिनाईसे थोड़ा आगे बढ़कर खड़ा हो गया, वे ख़ुद उतरकर बाहर आ गये। दो दुअन्नियाँ और एक अठन्नी उन्होंने मेरी ओर बढ़ाई। मुझे लगा मेरे हाथोंमेंसे विद्युद्धारा संचरित हो उठी है। जैसे किसीने हाथ बाँध दिया है। सामान उठाकर लानेमें भी इतना संकोच नहीं लगा था।

"ले जल्दी। खड़ा क्या सोच रहा है, ठीक है एक बक्सके बारह आने कम नहीं हैं, रात है इसलिए इतने भी दे रहा हूँ।" और जल्दीसे मेरे हाथमें पैसे रखकर वे गाड़ीमें जा बैठे, तभी प्लेट-फ़ार्मपर गूँजती हुई गार्डकी सीटीसे मैं चौंका।

स्टेशनसे बाहर निकलते ही चार आनेकी ताजी कचौरियाँ मैंने खाईं, तब जाकर मुझे लगा शायद इस रात मुझे भूख नहीं सतायेगी। अँधेरी सूनी कोठरीमें धूलसे भरी हुई खाटपर मैं पड़कर कब सो गया यह नहीं मालूम, बस एक स्वप्न मुझे उस रात दिखाई दिया, मैं बैठा हुआ सोच रहा हूँ कि मेरा भविष्य जीवन किस प्रकार कटेगा ?

सुबह उठते ही कोठरीकी सफ़ाई की, किताब-कापियाँ सब भैयाके घरपर थीं। मैंने भी सोच लिया था कि मर जाऊँगा पर वहाँ नहीं जाऊँगा। एक आनेका एक छोटा-सा घड़ा लिया। उसे पीनेको भर लिया शेष पैसोंके भुने हुए चने और गुड़ ले आया। तब बड़ा झिझकता-सा अपने अच्छे कपड़े पहनकर स्कूल गया। वहाँ अपने साथीकी पुस्तकोंसे पढ़ा।

आज सन्ध्याको थोड़े-से चने और गुड़ खाकर मैं स्वयं ही गन्दे कपड़े बदलकर स्टेशन जा पहुँचा। कलका संकोच परिस्थितियोंकी विषमतापर विचार करनेपर स्वयं ही कम हो गया था। चार-पाँच बिस्तर-बक्स उठानेपर

आज एक रुपया मिला। दो घंटे मैंने परिश्रम किया। अपनी कमाईपर ग्लानि, संकोच, क्षोभ और प्रसन्नताका अनुभव करता हुआ जब मैं लौटनेको हुआ तो वहाँके एक कुलीने मेरे पास आकर कहा "देख बे लड़के, कलको यहाँ आया तो कान उखाड़ लिये जायेंगे। साले यहाँ चले आते हैं। ऐसा है तो यहाँ नाम क्यों नहीं लिखा लेता।"

कुलीसे गाली सुनकर मैं स्तब्ध रह गया। इच्छा हुई रुपयेको इसके मुँहपर दे मारूँ। पर मै स्तम्भित-सा खड़ा ही रहा केवल, कुली चला गया। मैं सोचता हुआ चला आया। एक दिया और तेल आज मैं ले आया, सोच लिया कलसे स्टेशन जाऊँगा ही नहीं, मोटर-स्टैन्ड भी तो जगह है या फिर ताँगा शेडपर।

और इस प्रकार मेरी परीक्षाएँ पास आती चली गई। दिन छिपे ही गन्दे फटे कपड़े पहिनकर मज़दूरी करने निकल पड़ता। इस बार मैंने कच्चे चने लाकर रख लिये, रातको भिगो देता, सुबह नमक मिर्च मिलाकर खा लेता। यह मेरा नाश्ता था। सन्ध्याको स्वयं ही दो मोटी-सी रोटी बना लेता और चार पैसेका अचार ले आता।

परीक्षा हुई, पर मै गाँव जानेका साहस नहीं कर सका। भैया और भाभीसे अपने कुपुत्रके ग़ायब होनेका समाचार सुनकर उन दोनों माँ बेटीका क्या हाल होगा, सोचनेसे ही मेरे हृदयको कोई आरेसे चीरने लगता। पर उस दिन मे वास्तवमें आश्चर्यसे जड़ रह गया, जब देखा, प्रातःकाल ही अम्मा और अरुणा मेरी कोठरीके दरवाज़ेपर खड़ी है। मुझे विश्वास नहीं हुआ। अम्मा मुझे देखते ही आकर लिपट गई, फूट-फूटकर रो उठीं। पर मैं नहीं रो सका। एक भी आँसू मेरी आँखोंमें नहीं आया। उमड़ते हुए ज्वारको दाँत भींचकर मैंने दबा लिया। अरुणा दूसरी ओर मुँह करके ऊँचे मकानोंको देखने लगी। अम्मा रोती रहीं, पर मैं पत्थर बना रहा। मैंने अरुणासे कहा "भीतर आ जाओ, अरुणा।"

और उस दिन बड़ी देरतक घरकी, गाँवकी बातें होती रहीं। अम्माने

कई बार भैयाकी बात कहीं, पर मैंने न तो तनिक भी उत्सुकता दिखाई और न इस विषयमें बात की। मैं बड़ा संयत गम्भीर होकर बात कर रहा था। पचपन रुपये मैंने जमा कर लिये थे। भविष्यका कार्यक्रम सोचते हुए मैं अरुणा और अम्माके लिए अन्य प्रबन्ध करता रहा। उसी दिन आठ रुपये महीनेपर उस कोठरीके बग़लवाली कोठरी भी मैंने ले ली। अम्माके आनेपर मुझे प्रसन्नता नहीं हुई, सही, पर दुख हुआ ऐसा मैं आज भी नहीं कह सकता। केवल एक सान्त्वना-सी मिली। कुछ सामान अम्मा साथ ले ही आई थीं।

रातको अरुणा मेरे पास आकर बैठ गई। पास ही दिया जल रहा था। पुस्तकसे सिर उठाकर मैंने उसकी आँखोंमें देखा।

"तुम आये क्यों नहीं भैया" बड़े स्नेहसे उसने मेरा हाथ पकड़ लिया। मुझे लगा उसकी आँखें तरल हो गई। इच्छा हुई अपनी सारी कथा इस निश्छल बहिनके सामने कह दूँ। आँखोंमें, आज दिनभरमें पहली बार आँसू भर आये। रुँधे कंठसे कहा, "क्या करता ?" वह थोड़ी देर मेरी ओर देखती रही, फिर शायद मुझसे छिपाकर उसने धीरेसे साँस खींचकर कहा, "भैयाके पाससे क्यों चले आये ?"

मुझे लगा, स्नेहके इस भारको मैं सँभाल नहीं सकूँगा। मेरे शरीरका रोआँ-रोआँ सरस आर्द्रतासे काँप उठा। आँखोंसे चुपचाप आँसू ढुलक पड़े। कितना अन्तर था, उस दिनके और आजके आँसुओंमें, वे तीखे तीव्र तिक्त, कटु और विषाक्त; ये सरस स्नेह-सिक्त और पुलकाकुल !

उस दिन बड़ी रात तक मैं उसे भैया-भाभीका हाल बताता रहा। भैया द्वारा गाँव पहुँचाई गई अपने घरसे भाग जानेकी कथा सुनता रहा। थकी होनेके कारण अम्मा सो गई थीं।

मैंने ट्यूशन किये। अम्मा और अरुणासे छिपकर अपने फटे कपड़ोंका प्रयोग किया। टाइपिस्टका काम किया और तब चार वर्षोंमें बी० ए० किया। कभी-कभी अम्मा कहीं पीस बना आतीं।

आज मैं इन्क्वायरी इन्सपेक्टर हूँ। दो टयूशन हैं काफ़ी पड़ जाता है। अच्छा मकान है। एक नौकर लड़का है अम्मा और अरुणा यहीं हैं।

आज जब मैं घर आया तो बड़ा प्रसन्न था। दूसरा या तीसरा महीना मुझे यहाँ आये समाप्त हो चुका था। वेतन लिये हुए मैं अपनी नई चमचमाती साइकिलपर चला आ रहा था। तभी दूरसे देखा। मेरे घरके सामनेसे कोई ताँगा सड़कपर चला गया। अपने कमरेमें जैसे ही बैठा, पुलकित पगोंसे अरुणा भी कमरेमें आ गई। वह भी आज विशेष प्रसन्न थी। सहज हँसी उसके अधरोंसे फूटी पड़ती थी। आते ही पूछा "आ गये ? आप नाश्ता सबके साथ करेंगे या यहीं लाऊँ ?"

"सबके साथ कौन ?" मैंने उत्सुकतासे उसके मुँहकी ओर देखा। आते समय दिखाई देनेवाला ताँगा मुझे याद आ गया।

"अरे, आपको नहीं मालूम ?" अरुणाने कहा, "भैया-भाभी आये हुए है।"

"भैया !" मैं गम्भीर हो गया, अरुणाके प्रफुल्लित मुखको देखकर मेरे मुँहपर जो हँसी थी वह तिरोहित हो गई।

"हाँ, भाभी तो आपकी बड़ी याद कर रही हैं, जबसे आईं कई बार पूछ चुकी हैं, बता रही थीं, रोज़ याद कर लेती थीं, अम्माके सामने रो पड़ीं। वह तो वैसे ही कहनेमें बुरा मान गया, क्या भैया भाभीको इतना भी अधिकार नहीं है ? चलो भैया वहीं सब नाश्ता करेंगे।" अरुणाने मेरा हाथ पकड़ लिया।

मेरा मुँह गम्भीरतर होता चला गया, मैं चुप हो गया, अरुणाकी बातका मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। सोचता रहा।

मुझे चुप निश्चेष्ट देखकर अरुणा थोड़ी देर पश्चात् कुटिलतासे मुस्कराके मेरे निकट मुंह लाकर जैसे किसी गूढ़ रहस्यका उद्घाटन कर रही हो, बोली, "और....और भैया, भाभी तैयार कर आये हैं, फ़ोटो तो सच इतनी अच्छी है, भैया...."

मुझे कुछ भी नहीं सुनाई दे रहा था; किन्तु अरुणाका यहाँ रहना

न जाने क्यों असह्य लगता जा रहा था। मै एकान्त चाह रहा था, 'अरुणा मै यहीं नाश्ता करूँगा यहीं ले आओ।" निरुत्साहित और अंशतः कातर स्वरसे मैंने अरुणासे अनुरोध किया।

थोड़ी देर वह मुझे आश्चर्यसे देखती रही फिर धीरे-धीरे चली गई, शायद भैया भाभीको यही बुलाने या नाश्ता लाने।

उसके जाते ही मै उठकर खड़ा हो गया। कमरेसे निकलकर पौलीमें आ गया। पौलीमें अब भी दो चमड़ेके सूटकेस एक टीनका बक्स रखे थे। मैं देखता रहा। मेरे अन्दर इस समय क्या हो रहा था मै नहीं कह सकता, जैसे किसी बड़े कारखानेका सारा कोलाहल पुंजीभूत होकर सिरमें भर गया हो। संयत और दृढ़ पग मैंने सामानकी ओर बढ़ाये। बहुत गंभीरतासे बिस्तरके पास जाकर खड़ा हो गया, झुका और बिस्तरको झटकेसे उठा लिया। अब मुझे आश्चर्य है इतना भारी बिस्तर मैंने कैसी सरलतासे उठा लिया। एकाध बार हिलाया फिर ज़ोरसे बरामदेके बाहर फेंक दिया।

"अरे भैया।" घूमकर देखा तो अरुणा एक हाथमें गिलास और दूसरेमें नाश्तेकी तश्तरी लिये देख रही थी। उसकी आँखें आश्चर्यसे जैसे बाहर निकली पड़ रही हों।

एकदम सिर उठाकर मैंने चमड़का सूट केस उठाया, पहिलेसे ज़ोरसे उसे भी बाहर फेंक दिया। उसका पिछला हिस्सा टूट गया और कपड़े इधर-उधर फैल गये।

"भाभी" अरुणा ज़ोरसे चिल्लाई।

शीघ्रतासे मैंने टीनका बक्स उठाया, "कौन, अरे नवल, क्या है?" भैया मेरी ओर दौड़े। झूलते हुए बक्सेको ज़ोरसे फेंककर मै गरजा, "मेरे घरमें जगह नहीं है!"

कमरेमें घुसकर मैंने ज़ोरसे किवाड़ बन्द कर लिये।

× × ×

दूसरे दिन दातौन करते समय मैंने सुना, हमारे पड़ौसी एक वृद्धने

निचले होठ और मसूड़ोंके बीचमें बड़े संभालकर बनाई हुई तम्बाकू रखते हुए अपने घनिष्ट मित्र न्यौला पंडितसे आँखें मटकाकर बड़ी गम्भीरतासे कहा, "देखो ये आजकलके लड़के है। पाँच सालमें भैया मिलने आया तो सामान निकालकर फेंक दिया। ठहरने नहीं दिया। ख़ास भैया। कलयुग है, क्या कहें।"

वे नरभक्षी !

नव-विवाहके अवसरपर तुम्हारा अनुरोध टालना अशोभन है; लेकिन जब तुम मांस खानेका मुझसे इतना आग्रह कर रही हो तो मुझे बचपनकी एक घटना याद आ रही है। उस समय मुझे मांस खानेका बड़ा चाव था। माताजी धार्मिक विचारोंकी थीं, मना करतीं; पर मैं पिताजीके साथ बैठ ही जाता। उस दिन नौकरने मेरे सामने ही बड़े सुन्दर छोटे-से बकरीके बच्चेको काटा। उस समय एक बार इच्छा हुई काश, यह इस प्रकार न कटकर मुझे खेलनेको मिल जाता, खूब हाथ फेर-फेरकर मैं खेलता—कितना चिकना प्यारा-सा था! किन्तु उसी समय मुलायम मांसके स्वादका ध्यान आया। मैं सब कुछ भूल गया। मेरे मुँहमें रह-रहकर पानी आ जाता। बवर्ची (क्योंकि वह ब्राह्मण नहीं था) न ज़ाने कब तरकारी तैयार करेगा। कई बार मैं उसके पास गया। सारे वातावरणमें उत्तेजक मादक सुगन्धि व्याप्त थी। जितनी भी बार मैं उसके पास गया मेरी भूख तेज़से तेज़ होती गई। बवर्ची बार-बार कहता—"बाबूजी, अभी देर है।" चौथी या पाँचवीं बार मुझसे नहीं रहा गया। उसका हाथ पकड़कर पृथिवीपर पैर पटकते हुए मै मचलने लगा—"तुम मुझे प्लेटमें कच्चा ही रख दो।" जितना ही वह मना करता, मुझे ज़िद आ रही थी। मै रोने और उसका हाथ काटने लगा—"मुझे तो अभी दो!"

"क्या है? क्यों रो रहा है? उसे छोड़ता है कि नहीं।" तभी माताजीका तेज़ स्वर सुनाई दिया। मैं सहम गया, फिर भी हाथ नहीं छोड़ा।

"माताजी (मेम साहब सम्बोधन उन्हें पसन्द नहीं था) ज़िद पड़ रहे हैं जबसे, गोश्त कच्चा ही रख दे।" बवर्चीने कह दिया।

"बड़ा गोश्त खानेवाला आया, छोड़ उसे।" और माताजीने मेरा हाथ पकड़कर ज़ोरसे झटक दिया, डाँट लगाई—"बिना गोश्तके खाना ही नहीं उतरता लाट साहबके गलेके नीचे।" मै आहत-अभिमान रोने लगा। माताजीने दो तमाचे खींचकर जड़े गालोंपर—"चल उधर, ख़बरदार जो कभी गोश्त-ओश्तका नाम लिया।" और मुझे कमरेकी तरफ़ धकेल दिया। वे एक ओर चली गईं। मुट्ठी आँखोंमें मसलता-रोता मै वहीं खड़ा रहा। तभी बवर्ची आया—"बाबू, बस बन गया ज़रा-सी देर है।" वह चुप कराने मेरे पास आया। मैंने उसका हाथ बुरी तरह झटक दिया और दुगुने वेगसे रोता हुआ भीतर कमरेमें भाग गया। एक ओर कमरेमें घर-भरके बिस्तर रक्खे थे। मैं उन्हींपर लेटकर धीरे-धीरे सिसक-सिसककर रोता रहा।

माताजीको क्या पड़ी सा'ब हम कुछ भी खाते रहें, और, यह बवर्चीका बच्चा? इसे तो किसी दिन ऐसी ईंट फिराकर मारूँगा कि खोपड़ी खिल जायेगी। न जाने कितनी देर मैं रोता रहा। तभी पासवाले बँगलेमें रहनेवाला समवयस्क लड़का मुझे खोजता हुआ आ गया। उसके स्वास्थ्यके कारण सब लोग उसे 'सैण्डो' कहते थे। मुझे देखते ही बोला—"तुम यहाँ लेटे हो, देखो कितनी नावें जीजीसे बनवाकर मैं ले आया हूँ। नहरपर चलो, वहाँ बहायेंगे।" और उसने दूसरे हाथवाला डिब्बा खोला। मैं धीरेसे उठा। क़मीज़से मुँह पोंछा और चल दिया उसके साथ। सोच लिया, खूब देरमें लौटूँगा, तभी माताजीको पता चलेगा।

हम दोनों बँगलेसे बाहर आ गये। घरसे कोई दो फ़र्लांगपर नहर थी। दोनों चुपचाप चल दिये। दोपहरका समय हो गया था। भूख अब मेरी शायद मर चुकी थी। नहरके किनारेपर घने पेड़ लगे हुए थे, छोटा-सा बग़ीचा भी था। हम दोनों किनारेकी हरी घासपर आकर बैठ गये। सैण्डोने डिब्बा खोला और छोटी काग़ज़की नावें निकाल-निकाल घासपर रखने लगा। मैं उन्हें खोल-खोलकर तैयार करने लगा। हम दोनों

तल्लीन थे। सहसा पीछे कुछ खड़खड़ाहट हुई। मैंने सिर घुमाकर देखा——ओफ़ ! मेरी ऊपरकी साँस ऊपर और नीचेकी नीचे रह गई। ख़ूब ज़ोरसे चीख़ पड़नेको मन हुआ, पर भीतरसे उठी हुई चीख़ गलेमें इस बुरी तरह फँस गई कि कुछ देरतक लगा साँस आयेगी ही नहीं ! एक वहुत बड़ा आदमी बग़ीचेसे निकलकर हमारी ओर आ रहा था——इतना बड़ा कि सारे जीवनमें मैंने उसकी कल्पना भी नहीं की। कोई पच्चीस-तीस फ़ीटका वह रहा होगा। बग़ीचेके आमके पेड़ोंके बराबर वह ऊँचा था।

एक बार एक मन्दिरमें ख़ूब बड़ा-सा नगाड़ा-सा देखा था उस जैसा उसका मुँह, ख़ूब बड़ी घनी काली मूँछें, ख़ूब बड़े-बड़े और तगड़े हाथ-पैर। डरके मारे मैं उसकी आँखें देख ही नहीं सका। रामलीलामें बने काग़ज़के रावणकी याद मुझे आ गई। मै उसकी ओर अधिक देखनेका साहस नहीं कर सका। दोनों हाथोंसे मुँह ढँककर वहीं पृथिवीसे चिमट गया, मालूम नहीं सैण्डोने क्या किया।

तभी किसी बड़ी भारी मोटी-सी चीज़ने मेरी बाँह पकड़कर मुझे उठा लिया। मैंने आँखें खोलीं ज़रा-सी, देखा उस भयानक 'दानव'ने अपना हाथ बढ़ाकर मुझे बाँहसे उठा लिया था। दूसरे हाथसे उसने सैण्डोको पकड़ रखा था। फिर हमें झुलाता हुआ वह एक ओर चल दिया। मेरा मस्तिष्क बिलकुल भाव-शून्य हो गया था। मुझे आश्चर्य है उस समय मेरा 'हार्टफ़ेल' क्यों नहीं हो गया। मेरी बाँह जैसे उखड़ी जा रही थी। पीड़ाके मारे मेरा अंग-अंग तड़प रहा था। चाहनेपर भी चीख़ नहीं निकल पा रही थी——मै रो नहीं पा रहा था। भीतर ही भीतर इच्छा होती एक बार रो लूँ——चीख़ लूँ, तो शायद शान्ति मिल जाये। उस समय मुझे अनुभव हुआ कि पीड़ामें रोना और चीख़ना कितना शान्तिदायक है। धीरे-धीरे मैं चेतना-शून्य हो गया। मुर्ग़ोंकी तरह वह हमें ले चला।

धीरे-धीरे जब मुझे होश हुआ तो मुझे लगा मै पृथ्वीपर पड़ा हूँ। आँखें खोलीं, पर तभी जैसे दहकती सलाखोंके डरसे फिर बन्द कर लीं।

उसी एक दृष्टिमें मैंने जो कुछ भी देखा वह वर्णनातीत है—बीचमें काफ़ी बड़े-बड़े लक्कड़ जलाकर आग जलाई हुई थी उसके चारों ओर चार या पाँच वे बड़े-बड़े दानव बैठे हुए थे।

सबसे पहिले मेरी दृष्टि जिसपर पड़ी वह एक स्त्री थी। कपड़े वे सब हम लोगोंकी ही भाँति पहिने हुए थे। शायद उन भयानक दैत्योंके मध्य वह सुन्दरी रही हो, पर मुझे तो उनका भीमाकार देखकर ही एक ऐसे दुर्निवार आतंकने आच्छन्न कर लिया कि मेरा मन और मस्तिष्क बिल्कुल जड़-निष्क्रिय हो गये और शायद यह अवस्था लाभदायक ही रही। बातें वे हम लोगोंकी ही भाषामें कर रहे थे। न चाहनेपर भी गरम और पिघलते सीसेकी भाँति वे बातें मेरे कानोंमें पहुँचती हुई नसोंका रक्त जमाये दे रही थीं। आश्चर्य है उस समय एक-एक शब्द जैसे मेरी समझमें आता हुआ मेरी पसलियोंमें हथौड़ेकी चोट कर रहा था। वे बातें जिनकी उस आयुमें मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था, आजतक मुझे ज्योंकी त्यों याद है। आज उस बातको सोचता हूँ तो लगता है शायद मैं सिन्दबाद जहाज़ीके युगमें पहुँच गया था; चौथे या पाँचवें सफ़रमें जब वह और उसके साथी एक ऐसे ही दैत्यके पल्ले पड़ गये थे। अब तो झुँझलाहट होती है कि वैसी ही कोई छूटनेकी तरकीब मुझे याद क्यों नहीं आई। गलीवरने भी अपनी यात्रामें ऐसे ही दैत्योंका वर्णन किया है। आस्कर वाइल्डने बालकोंको प्यार करनेवाले एक दैत्यकी बात लिखी है, पर वे सभी दयालु थे! 'दास्तान अमीर हम्ज़ा'में साहिब क़ुरान अमीर हम्ज़ा ख़ुद ऐसे दैत्योंसे लड़ता फिरा था। वहाँ ऐसे फन्देमें पड़नेका सवाल ही नहीं था। आज वे सब बातें याद आती हैं। ख़ैर, मेरी क्रिया-शक्ति उस समय तो जैसे बिलकुल ही मर गई थी। मैंने अनुभव किया मेरे पैरपर किसीका पैर रक्खा है; शायद वह सैण्डोका रहा हो। पहिले तो उनकी बातें तनिक भी समझमें नहीं आईं, केवल जैसे 'माइक' लगाकर कोई चीख़ता हो, ऐसे स्वर कानोंको फाड़े डालते थे, पर

जब उनका अभ्यास हो गया तो लगा उन लोगोंमें अच्छी खासी बहस छिड़ी है—

"अभीतक वे लोग आये नहीं हैं, भोजके समय तक शायद देर हो जायेगी।" आवाज़ उस स्त्रीकी-सी लगी। कुछ रुककर वह बोली—"भगवान् करे उन्हें कोई भी न मिले, न जाने इन बेचारोंको तुम कहाँसे पकड़ लाये हो।"

"भगवान् करे!" किसी पुरुष-कण्ठकी विद्रूपभरी वाणी सुनाई दी—"देख लेना अभी लिये आ रहे होंगे दो चारको! आज तो सचमुच बड़ा मज़ा आयेगा। वह तो कहो, अचानक मैं नहरपर जा निकला, ये दोनों न जाने क्या खेल रहे थे।" और उसने विजयका अट्टहास किया।

"भई, इसके साथ पीनेका मामला ज़रूर होना चाहिये।" किसी तीसरे कण्ठने कहा।

"अरे सा'ब, ख़ूब है पीनेकी आप चिन्ता क्यों करते है! और बहुत बढ़िया है पीनेको।"

तभी मैंने अनुभव किया, मेरे पाँवपर रक्खा हुआ पाँव कुछ हिला और फिर हट गया। मुझे लगा जैसे कोई उठकर भागा बड़ी ज़ोरसे। इच्छा हुई कि गर्दन घुमाकर देखूँ!

"अरे वो भागा एक तो—सामनेसे ही।" और एक दैत्यने गर्दन घुमाकर देखा, अपनी पलकोंके कमसे कम खुले भागमेंसे मैंने झाँका। देखनेके साथ ही वह उधर लपका। उठकर कितना लम्बा हो गया था—ओफ़! कुछ ही क्षण बाद वह लौटा, मैंने देखा एक हाथसे खिलौनोंकी भाँति गर्दन पकड़े हुए वह सैण्डोको उठाये ला रहा था। सैण्डोका मुँह लाल हो गया था, आँखें निकली पड़ रही थीं और वह बुरी तरह छटपटा रहा था। वह दैत्य अपने स्थानपर बैठ गया—मैंने तनिक-सी पलकें खोलकर देखा।

"सामनेसे ही भागता है।" उस दैत्यने सैण्डोको अपने सामने रख लिया।

"लाओ देखें, कमज़ोर है या बलवान्।" उसके पासवालेने कहा और सैण्डोके दोनों कान पकड़कर ज़मीनसे ऊँचा उठा दिया। वहीं झुलाने लगा जैसे हम कभी-कभी पिल्लोंको करते हैं। सैण्डोके मुँहसे एक चीख़ निकल गई और उसकी आँखोंसे आँसू निकलने लगे।

"अरे-अरे रहने दो, च्च्-च्च् यह क्या करते हो।" उस स्त्रीने हाथसे रोका और मुँह दूसरी ओर घुमा लिया।

"रहने दो, क्यों तंग करते हो उस बेचारेको।" एक दूसरा दैत्य बोला।

उसने सैण्डोको पृथ्वीपर रख दिया। बोला––"यह तो फिर भाग जायेगा।"

"अरे साहब, भागेगा कैसे।" और पहिलेवाले दैत्यने उसका हाथ और दाहिना पैर दोनों हाथोंसे पकड़कर पतली-सी लकड़ीकी तरह 'खट्'से तोड़ दिया। मेरे मुँहसे बड़े ज़ोरकी चीख़ निकल गई और सारा शरीर जैसे बिजलीके 'करन्ट'से सन्ना उठा। तबतक उसने सैण्डोका दूसरा पाँव भी घुटनेसे तोड़ दिया, फिर बड़े विश्वाससे हँसकर बोला––"भागेगा कैसे।" मुझे अनुभव हुआ कि कुछ क्षणको मै बिल्कुल संज्ञा-शून्य-सा हो गया था।

मेरे मस्तिष्कमें एकदम एक ख़रगोशका चित्र आ गया। एक दिन सड़कके नीचेकी छोटी-सी पुलियामें हमने उसे घेर लिया था। कई लड़के थे। बड़ी कठिनाईसे जब वह पकड़ा गया, तो भागने लगा, तब हममेंसे एक बड़ेसे लड़केने ठीक इसी भाँति बड़ी आसानीसे उसके चारों पैर ककड़ी-की तरह तोड़ दिये थे। पैर तोड़ दिये जानेके पश्चात् एक जीवित प्राणीके कष्टका अनुभव मुझे आज हुआ और अब यह अनुभव मेरी रग-रगमें सहस्त्रों शूलोंकी भाँति छिदने लगा! बेचारा सैण्डो! शायद वह रोते-रोते बेहोश हो गया था! उसके मुँहसे झाग-से निकलने लगे थे।

"ओफ़ हो! तुम लोग बड़े निर्दय हो।" उस स्त्रीने गहरी साँस लेकर कहा––"भविष्यसे डरो,––यह भी कोई खाना है!"

"तुम्हारी यही बात तो रानी, हमें अच्छी नहीं लगती, हमेशा वही

धर्म-कर्मकी बात।" एक दैत्य बोला—"अपना-अपना खाना है, आजतक कोई भी मांसके बिना रहा है ?"

"सभीके प्राण होते हैं—वेदना होती है।" उस स्त्रीने कहा—"अपना-सा ही सबको समझना चाहिये—भगवान्से डरो तुम लोग !"

"ये सब घिसी-घिसाई बातें हैं। शेर-चीते सब यों ही खाकर रहते हैं एक दूसरेको। वहाँ नहीं रोकने जाता उन्हें कोई ! और अब तो यह भी सिद्ध हो चुका है कि वनस्पतिमें भी प्राण है।"

"लेकिन उन्हें खाये बिना काम नहीं चल सकता !" स्त्री बोली।

"यही बात हमारे साथ है, तुमने खाया ही तो नहीं है। एक दिन खा लोगी न गोश्त, तो यह सारे तर्क भूल जाओगी !"

"यही बात हमारे साथ नहीं है।" वह पुरुष बोला, जो बहुधा चुप बैठा था और जिसने सैण्डोके कान पकड़कर उठानेसे मना किया था—"शेर और चीतोंके दाँत-जीभसे मालूम होता है कि वे गोश्तखोर हैं, लेकिन हमारा शारीरिक गठन यह नहीं कहता। रही वनस्पतियोंकी बात सो यदि उन्हें क़लम नहीं किया जाया करे तो वे धीरे-धीरे स्वयं नष्ट हो जाया करें ! ऐसा नहीं हुआ कि कोई भी वनस्पति केवल मनुष्योंके खानेसे समाप्त हो गई हो; लेकिन पशु और पक्षियोंकी जातियाँ हैं, शिकारियोंकी कृपासे जंगलके जंगल जिनसे ख़ाली हो गये हैं।" थोड़ी देर वह चुप रहा कि उसकी बातका लोगोंपर क्या प्रभाव पड़ा, पर उसके विरोधमें कोई कुछ नहीं बोला—"तुम्हारे ये भौतिकवादी कहते है कि हम निरन्तर उन्नति कर रहे है तथा मानव जातिका भविष्य और भी उज्ज्वल है, उसका स्वर्ण-काल पीछे मानना प्रतिक्रियावाद है, पराजयवाद है। लेकिन आदिम मनुष्यमें और तुममें क्या भेद है यह मेरी समझमें नहीं आता। मांसके पश्चात् मनुष्यने अन्न खोजा, वह मांसाहारीसे अन्नभोजी हुआ—यह उसका विकास था या ह्रास ? यदि यह विकास था तो तुम लोग क्यों उसे पुरानी ही अवस्थामें खींचे ले जाते हो ?"

"इसमें खींच ले जानेकी कोई बात नहीं है, हम अपनी आदिम प्रवृत्तियोंसे छुटकारा नहीं पा सकते!" उनमेंसे एक झुंझला पड़ा।

"छुटकारा नहीं पा सकते, केवल इसीलिए उनको और भी फैलाया जाये। यह तो कोई तर्क नहीं है और यों अपनी आदिम प्रवृत्तियों——प्रकृति——और विवेकका संघर्ष ही मानवताकी विजय-विकास-गाथा है! यही संस्कृति है। संस्कृतिका अर्थ ही है आदिम स्वभावके संस्कारोंका इतिहास। स्वच्छन्द मैथुन मनुष्यकी आदिम प्रवृत्ति थी, लेकिन ऐसी सारी प्रवृत्तियोंको नियन्त्रित करनेपर ही तो हम उन्नति कर रहे हैं।" उसने अकाट्य तर्ककी तरह कहा।

तभी एक जैसे सारी बातोंको मज़ाक़में उड़ाता हुआ बोला——"कुछ कहो यार, हम तो मांस खाना छोड़ेंगे नहीं।"

"मुझे आश्चर्य है तुम अपनेको कवि कहते हो। बताते हो कि तुम्हारा हृदय भावुकतासे छलकता आ रहा है, सांध्यगगनकी सारी लालिमा उदासीके रूपमें तुम्हारी भावनाओंमें उतर आई है और नीड़की ओर लौटते हुए पंछियोंकी आतुरता तुम विह्वल होकर बखानते हो। दिखाते हो कि जड़ और चेतन सभीमें तुम जीवनका स्पन्दन अनुभव कर रहे हो और तुम्हारे हृदयका अतुल अभाव प्यारके आँसुओं द्वारा द्रुमदल, पल्लव, बादल, चाँद, रश्मि, शमा, शबनम, उषा, लहर, रागिनी, ज्योत्स्ना, नैशकुन्तल, फूल, कलियाँ और सान्ध्य-तारक सभीपर बरस पड़ता है। उफ़! यह सब कैसी विडम्बना है।"

"अरे किस ज़मानेकी बातें लेकर बैठ गये। म्याँ, एक बार चख लो, फिर देखो तुम्हारी यह सब बातें कहाँ चली जाती हैं। मैं अपनेको यदि कवि कहता हूँ तो इसका यह मतलब नहीं है कि मैं खाना-पीना सभी छोड़ दूँ।"

मुझे आश्चर्य हुआ कि इन लोगोंमें भी कवि है। ज़रा-सी पलक खोलकर देखी, बड़े-बड़े लम्बे बाल पीछेकी ओर संवारे हुए, दाढ़ी मूँछ साफ़! मनमें न जाने किसने कहा, यह कवि हैं!

"अरे छोड़ो भी इन झगड़ोंको, न जाने कबसे गोश्त खाने न खानेपर बातें होती चली आ रही हैं, आजतक तो यह रुका नहीं है। सारा संसार खाता है, हमारे पुरखे खाते थे। लाओ इसे भून लें, वे लोग तो आते नहीं हैं अभी।" एक बोला।

"अच्छा लाओ।"

मैं चौंक गया। यह किसके विषयमें है। तभी देखा एकने सैण्डोकी बाँह पकड़कर उठा ली। वह बेचारा एक बार ज़ोरसे कराहा, उसके दोनों पैर टूटे हुए हिल उठे। उसका लाल चेहरा एकदम पीला पड़ गया था और पीड़ाकी एक ऐंठन-सी बार-बार उसपर दौड़ जाती थी। एक दैत्यने उसके पैर पकड़ लिये एकने हाथ, फिर बीचमें जलती हुई लपटोंके बीचमें ले गये! उफ़! वह दृश्य आज भी जब याद करता हूँ, तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं! हाथ और पैर दोनों ओरसे विवश बेचारा सैण्डो जलाया जा रहा था—जीवित। पहिले कुछ क्षण वह कितनी बुरी तरह चीख़ रहा था, कैसा असहाय-सा वह तड़फड़ा रहा था। सारा शरीर उसका ऐंठ-ऐंठकर रह जाता था, लेकिन लपटें थीं कि उसे खाये जा रही थीं। मुझे कुछ क्षणोंको लगा, जैसे मेरी सारी नसोंका रक्त शीतल पानी बन गया है। उसकी एक-एक कराह—चीख़-चिल्लाहट गरम-गरम कीलें-सी मेरे मस्तिष्कमें ठोकती जा रही थीं। धीरे-धीरे वह निश्चेष्ट हो गया।

एक बार हम कंजरोंके झोपड़ोंकी ओर निकल गये थे। वहाँ देखा चूल्हेमें आग जलाकर एक जीवित कछुएको उन्होंने उल्टा चूल्हेपर रख दिया था—कढ़ाईकी तरह! कैसे हाथ-पाँव उस समय वह चला रहा था। हाथभर लम्बी उसकी गरदन निकल आई थी—हाथ-पाँव भी बाहर निकल आये थे।

सैण्डोका शरीर काला पड़ने लगा और एक असह्य उबकाई लानेवाली चिरायँध सारे वायुमण्डलमें फैल-फैलकर मेरी साँस रोकने लगी! भुनती हुई जीवित मछलियों, पंख जलाई जाती हुई ज़िन्दा मुर्ग़ियोंकी तड़पन व्याकुलता और विवशताकी चेष्टाएँ मेरे मस्तिष्कमें दहकते अंगारे

भरने लगीं। मैं जैसे स्वयं तड़प रहा था और जैसे मुझे भी कोई भून रहा था ! कहीं इसके बाद मेरा नम्बर हो तो ? और आगे मैं सोच नहीं सका, गला मेरा सूख गया था।

"तुम्हारा तो दावा यह है कि तुम दूसरेके हृदयके साथ तादात्म्य कर लेते हो।" वह पहिलेवाला बोला—"सुनते हैं तुम्हारी वह कविता जिसमें तुमने वाल्मीकिके क्रौंच पक्षीकी मर्म-व्यथाको छन्दोंमें बाँधा है अमर रचना है।"

"क्यों ?—उसमें क्या अस्वाभाविकता है ?" तिनककर कवि बोला—वह सैण्डोके हाथ पकड़कर बड़े मनोयोगसे उसे भुनवा रहा था। थोड़ी देर चुप रहकर उसने कहा—"आप उस अवस्थाका अनुभव नहीं कर सकते। आज भी जब मैं उस कविताको पढ़ता हूँ तो रोने लगता हूँ। आह ! कितनी व्यथा है, कैसी वेदना है !"

"तो क्या वैसी ही पीर ये लोग अनुभव नहीं करते ? मैं किसी धार्मिक दृष्टिकोणसे नहीं, 'रीजनेबुल' (तर्कपूर्ण) और मानवताके नाते कह रहा हूँ। पीड़ाको अनुभव करने और आत्म-रक्षाकी भावना प्रत्येक जीवमें है, जो सिद्ध करती है कि जीवनके प्रति वे इतने विरक्त नहीं हैं—न मोक्ष पानेको ऐसे व्याकुल।"

"अरे भई, कौन जानता है कि कौन क्या अनुभव करता है और मालूम नहीं ये लोग अनुभव करते भी हैं या नहीं। मेरा तो यह दावा है कि ये लोग कुछ भी अनुभव नहीं करते, यह सब हमारे मस्तिष्ककी उपज है।" झुँझलाकर कवि बोला और चिरायँध नाकमें पहुँचनेसे जो पानी उसके मुँहमें भर आया था, उसे सटकने लगा।

भूनकर उन्होंने सैण्डोको अलग रखा। एक दैत्यने लकड़ीके बड़े कुन्देके पीछे रक्खे बहुत बड़े तलवार जैसे चाकूसे बड़ी-सी बोटी सैण्डोकी बग़लमेंसे काट ली, फिर एकदम मुँहमें रख गया। एक दुर्दमनीय वमनकी उत्तेजना मेरे भीतर उठी। फिर मैं उस ओर देख नहीं सका। मैंने बड़ा

साहस करके मुँह दूसरी ओर फेर लिया, पर उस ओर देखते ही मेरा भय चौगुना बढ़ गया। सामने बड़ा-सा पीपलका पेड़ था। न जाने कितनी लोमहर्षक वस्तुएँ वहाँ टँगी हुई थीं। उलटे लड़के, किसीका हाथ, पैर, कहीं सिर, सब इसी प्रकार सजा-सजाकर लटकाये गये थे---जैसे क़साईकी दूकानपर लटके हों। वह पीपल जैसे सारा आदमियोंकी लाशोंसे छाया हो।

"हलाल करोगे या झटका?" तभी मैंने सुना।

"झटकेमें क्या रक्खा है, हलाल करो।"

"मैं कह नहीं सकता उस समय मेरी क्या अवस्था हो गई थी। न जाने कैसे मुझे मालूम पड़ गया कि वे मेरे ही लिए कह रहे थे। मेरा सारा शरीर एक बार जैसे 'सुन्न' पड़ गया। एक बार इच्छा हुई उठकर भाग जाऊँ; पर वह ख़रगोश, वह कछुआ, मछली, मुर्ग़ी---जिनके मुँह सैण्डोकी तरहके थे, मेरे मस्तिष्कमें दौड़ गये। हे भगवन्, मुझे बचा, कुछ न कुछ शीघ्र होना चाहिये। इन लोगोंका कुछ ठीक नहीं है। कैसे निर्दयी आदमी है! बेचारेको जीवित जला डाला---मेरा क्या करेंगे?

तभी किसीने अचानक मेरी छातीपर ज़ोरसे अपना वज्र-सा पाँव रख दिया। मैंने देखा वह २० फ़ुट ऊँची भयंकर मूर्ति लम्बा छुरा लिये खड़ी थी! एक क्षणको लगा उसका मुँह बकरीके बच्चेकी तरहका है, फिर लगा---नहीं वह बवर्चीसे अधिक मिलता है। सारी शक्ति लगाकर मैंने प्रयत्न किया कि तड़पकर छूट जाऊँ, किन्तु मुझसे हिला नहीं गया। आह, ये लोग मुझे भी अभी खा जायेंगे। बड़े भयंकर दृढ़ निश्चयसे वह झुका, उसकी आँखोंमें ख़ून झलक उठा---वे मशाल-सी जल उठीं! उसका छुरा नीचे बढ़ा, मैं पूरे बलसे चीख़ पड़ना चाहता था, पर साँस नहीं निकल रही थी। मेरे शरीरके अणु-अणुमें ऐसी दुर्निवार छटपटाहट हो रही थी कि काश! किसी प्रकार उसके पंजेसे छूट पाता। उसका छुरा मेरी गर्दनकी ओर बढ़ रहा था। हे भगवन्, इसका हाथ एकदम टूट जाये। अभी यह मेरी गर्दन छुरेसे रेतेगा जैसे बकरेकी गर्दन रेतते हैं। उफ़! मेरे सारे शरीरमें

मोटे-मोटे रोंगटे खड़े हो गये थे ! एक क्षणमें मेरी आँखोंके आगे दावतका दृश्य आ गया, जिसमें मेरा बड़ा स्वादिष्ट गोश्त बनाया गया है, लोग उँगलियाँ चाट-चाटकर खा रहे हैं, बोटियाँ मेरी आँखोंमें नाच उठीं, भुनता मसाला,——बोटियाँ, अभी ! छुरा मेरी गर्दनपर रख दिया गया था। अभी यह घूमने ही वाला है, मैं विवश हूँ, असहाय हूँ ! सारी करुणा, सारी याचना, सारी दीनता अपनी आँखोंमें भरकर मैंने उस दैत्यकी आँखोंमें देखा, पर वहाँ पत्थरकी भयंकर क्रूर आँखें थीं। मेरी आँखोंमें पापाजी, माताजीका चित्र चमक उठा । छुरा एक बार ज़ोरसे फिरा... ओफ़ ! वह धार——वह पीड़ा, और उस समय मेरी पसलियाँ तोड़कर छाती फाड़कर एक भयंकर चीख़ ज्वालामुखीके विस्फोटकी भाँति फूट पड़ी——मैं अचेत...!

एकदम देखा——माताजी, बवर्ची, पापाजी और न जाने कौन-कौन मेरे चारों ओर घबराये-से जमा थे और मैं कमरेमें बिस्तरोंके ढेरके ऊपर पसीनेसे लथपथ पड़ा धीरे-धीरे सुबक रहा था !
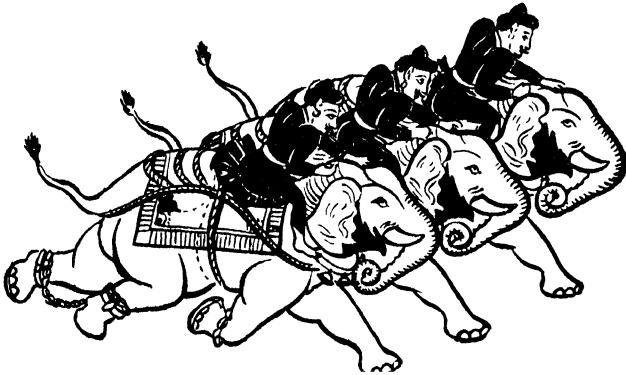
और मेरा प्रश्न सरल हो रहा है

ग्यारहके घंटे कोठीमें बज रहे हैं।

तो क्या मैं इसी समय उठकर चला जाऊँ? हाँ तुम्हीं बताओ यह प्रतारणा यह प्रवंचना चलेगी आखिर कितने दिन? मुझे चला जाना चाहिये।

इस सूनी रातमें मैं बिस्तरेपर बेचैनीसे करवटें बदल रहा हूँ। बड़ी व्यग्रताका अनुभव मुझे इस समय हो रहा है। कभी-कभी कुहनियोंके सहारे उठकर बैठ जानेका प्रयत्न भी मैं करता हूँ। कोठीके भीतरवाले आँगनमें वे लोग सोये होंगे और यहाँ बाहरकी ओर मैं। कोठीके बरामदेमें रखी शीशेवाली मेज़ मुझे दिखाई देती है। धुँधली-सी एक ओर दूर नौकरों-की कोठरियाँ हैं। बाहर मेरी खाट और आसपास काफ़ी स्थान छोड़कर सामने फाटकतक पतली सड़क, मेंहदीकी पंक्तियोंसे घिरी चली गई है। कभी-कभी यह सब देख लेता हूँ।

लेकिन मेरी अपलक दृष्टि अब केवल आकाशपर ही स्थिर हो गई है। स्वच्छ सुन्दर पूर्ण चन्द्रमा पूर्वसे पश्चिमकी ओर बढ़ रहा है और गोड़े हुए खेतकी तरह बादलोंके टुकड़े सारे आकाशको ढाँके हुए हैं। चाँद कभी दिखाई दे जाता है, कभी छिप जाता है। न जाने कबसे चाँद यह खेल खेल रहा है। वायुके परोंपर बहे जाते झीने बादलोंसे चाँदकी उज्ज्वल प्रतिच्छाया झाँकती है जैसे सिकुड़नदार झीने पटको बहुत सधे हाथोंसे कोई दीपकके ऊपरसे सरकाये।

पर आज यह सब रक्षाबन्धनके दिन देखनेको मेरा जी नहीं कर रहा। मैं व्याकुल हूँ। बार-बार सोचता हूँ चला जाऊँ?

अभी थोड़ी देर पहिले वह गई है, कैसी बेशर्मीसे वह कहकर गई,

मुझे शर्म लगती है तुम्हारे सामने दुहराते। बड़े प्रेमका अभिनय करके इतराकर बोली थी---'भैया, मैं अगर उधर सो जाऊँ तो बुरा नहीं मानोगे ?" मैं बुरा क्यों मानने लगा, बोलो ? मेरी तरफ़से तुम रातभर चक्कर और लगा लेतीं। फिर बोली "बात ऐसी है देखो, उन्हें मेरे बिना नींद नहीं आती और मुझे भी....और हँस दी।" अरे नहीं आती तो मुझसे यह सब कहनेकी क्या ज़रूरत है, चली जाओ, तुम्हें रोकता कौन है ?

और यही बात उस समय मुझे कैसी अच्छी लगी थी। कितने अनुरोधसे मैं कहता---मेरे ऊपर विश्वास करो, मुझसे द्वैत न रखो, यह मत समझो कि मैं दूसरा हूँ। हेम, मैं चाहता हूँ हमारे-तुम्हारे बीचमें यह लड़की-लड़केका भेद ही न रहे। बिल्कुल मुक्त निश्छल, निष्कपट हम दोनोंको एक दूसरेके सामने आना चाहिये। तुम मुझसे साफ़ कहो जो कुछ तुम्हें कहना है। तुम यह भूल जाओ कि मैं कोई दूसरा हूँ और तुम यह बात किसी लड़केसे कह रही हो। याद रखो, जैसे यह सब तुम स्वयं मनमें ही कह रही हो। और तब भी मैंने अनुभव किया कि वह मेरे सामने बिल्कुल खुल नहीं सकी हो। और एक दिन जब उसने स्वयं ही बुलाकर मुझसे अपने विवाहके विषयमें पूछा कि क्या हो रहा है, वह महोदय कैसे हैं ? उसके उस अन्धकार भरे भविष्यमें आख़िर है क्या ? इन सब बातोंकी आशंकाओंसे भरा उसका हृदय जब मेरे कन्धेसे लगकर बाहर फफक पड़ा और मैं उसे दृढ़ अचल रहनेकी सान्त्वना देता रहा, तब मेरा हृदय जैसे पुलक उठा था। एक नारी जिसे शरत् जैसे कलाकारोंने गूढ़ रहस्यमय अगम्य न जाने क्या-क्या कहकर दुर्बोध बना दिया था, मेरे सामने अपना सारा हृदय खोलकर रखे दे रही है। मेरे मनमें बार-बार आता, एक स्त्री है जिसका हृदय मेरे सामने बिल्कुल खुला है, निरावरण है, लोग उसे समझते-समझते न जाने क्या कह मारते हैं। और फिर मेरे और उसके बीचमें कोई दुराव, कोई अन्तर नहीं रहा। हम भूल गये कि मैं लड़का

हूँ, वह लड़की। क्या बात उसे कहनी चाहिये, क्या मुझे नहीं। कमसे कम हमारे और उसके बीचमें कोई सीमा, कोई मर्यादा नहीं थी। हम दो घनिष्ठ मित्रोंकी तरह थे।

लेकिन जब आज मुझे मालूम है उसी स्पष्टवादिताके कारण वह मुझसे यह कह सकी, फिर भी कैसी निर्लज्जता? आख़िर मुझसे यह सब कहनेकी ज़रूरत? मालूम है अपने पतिको तुम बहुत प्यार करती हो, उसके बिना तुम्हें नींद नहीं आती। फिर मैं क्या करूँ? उस सारे प्रेमको दो घंटेतक बखानते हुए मेरी नींद, और नींदसे भी अधिक मन:स्थिति ख़राब किये बिना क्या तुमसे रहा नहीं जा रहा था? सारे दिन तो टहलती रही, और अब आई है हमें निहाल करने!

और मैंने दाहिनी ओर करवट बदली। मुझे यहाँ आनेकी ज़रूरत ही क्या थी? यह बिना इससे राखी बँधवाये क्या मेरा काम नहीं चल रहा था? मूर्खता तो सारी मेरी ही है और मेरी ही क्यों सारे भाइयोंकी है। राखी बँधवानेको ऐसे उत्सुक रहते हैं जैसे राखी नहीं विश्वका साम्राज्य वे इन्हें दिये डाल रही हों। अरे, जब तुम उनकी रक्षा करते थे तब समय और था तब रक्षाबन्धनका नाम भी सार्थक था। अब? अब वे तुम्हारी उलटी रक्षा करके रख दें, कहो तो खड़ा करके बेच दें। मैं चला हिन्दुस्तानके दूसरे सिरेसे किसके लिए? चलो अपनी परम स्नेहशीला बहनसे राखी बँधवा आवें––तरह-तरहकी पुस्तकें भेंटमें देने। देख लिया अब? नौकरसे बुलवाया तो भागी-दौड़ी सी आई, माथेपर तिलक लगाया जैसे माथेपर झटके-से स्विच दबा दिया हो। डोरा बाँधकर चली गई––अच्छी राखी भी नहीं।

"भैया, भेंट मेरी रख लेना, ज़रा मेरी 'ननद' उनके राखी बाँध रही है मेरा वहाँ जाना ज़रूरी है।" हाँ जी, तुम्हारे बिना वे बाँधेंगी कैसे। इन दिनों सारी पत्नियाँ ससुराल पहुँच तो जाती हैं कि उनके पतियों-की बहनें राखी बाँध रही हैं। भई, वे बड़े आदमी हैं जब उनकी बहिन राखी बाँधे, तुम्हें होना चाहिये वहाँ, दो कैमरामैन, दो-चार अख़बारवाले––

इसके बिना रक्षाबन्धन ही कैसा? और एक मैं हूँ सुबहसे ही किसीने बात भी नहीं पूछी। भेंटकी जो पुस्तकें लाया हूँ—सब रखी हुई हैं। किसीको लेनेका अवकाश है—न इच्छा। कोई सोनेकी या कुछ क़ीमती चीज़ होती। किताब क्या एक बार पढ़ी और रख दी, कितना उथला हो गया है हमारा दृष्टिकोण....

साढ़े ग्यारहका घंटा न जाने कब बज गया है। अब तो बारहके बज रहे हैं, मेरी विचारधारा टूटती है। मैं करवट बदलता हूँ।

तो क्या आज रातभर मुझे नींद नहीं आ सकेगी? इस घंटेपर इधर और उस घंटेपर उधर करवट लेते ही सारी रात बीत जायेगी। घड़ीके पैण्डुलम्की तरह यह बात मेरे मस्तिष्कमें बज रही है, तो क्या मैं उठ जाऊँ? चल दूँ? किसीको क्या मालूम होगा? वैसे मालूम होकर होगा भी क्या? अच्छा है बला टली। बला तो हूँ ही। अब जब सारे दिनकी घटनाओंका सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर रहा हूँ, तो यह स्पष्ट वास्तविकता कितनी शीघ्रतासे खुलती जा रही है कि मेरी यहाँ तनिक भी आवश्यकता नहीं है—मैं बोझ हूँ। इस बातको मुझे समझ तो सुबह ही जाना चाहिये था, लेकिन प्रेम अन्धा होता है। अब जब वह उपेक्षाकी निर्मम ठोकर मारकर मेरे सुप्त विचार-तारोंको झनझना गई है तब यह सत्य मेरी आँखोंके सामने आया है। सुबह आठ बजे मेरी गाड़ी आती है। जैसे ही ताँगेसे उतरकर भीतर आया, देखा। देखते ही वहीसे बोली "ओ भइया, तुम? कैसा अच्छा हुआ तुम आ गये।" और वैसे ही वह कैलेंडरकी तारीख़ बदलती रही। कितना निर्जीव भावना-विहीन स्वर था; पर मैं था कि ध्यान नहीं दे पाया और अगली बातमें ही भूल गया—"यह बड़ा अच्छा हुआ, मैं भी सोच रही थी, राखी किसके बाँधूँगी?" जी हाँ, मेरे लिए तो आप दम छोड़े दे रही थीं न। ओह, स्त्री कितनी मायाविनी होती है!

मेरा मन ऊब गया है। एक क्षण भी ठहरनेकी इच्छा नहीं होती।

लेकिन अब कहाँ जाऊँगा ? गाड़ी चार बजे जाती है। स्टेशनपर पड़ा रहूँगा तबतक यहीं जो लेटा रहूँ। किसीको क्या मालूम ? ऐसी स्नेहशीला तो हैं नहीं कि देखने आएँगी भैयाको कोई कष्ट तो नहीं है....। सुबह देखेगी। एक बजे न सही, मैं तीन बजे ही चला जाऊँगा। वहाँ भी कोई शान्ति नहीं मिली जाती। यहीं करवटें बदलूँ तबतक। लेकिन यह सब सोच-सोचकर मुझे आश्चर्य होता है। इतनी शीघ्र बदल कैसे गई ? यह आकस्मिक परिवर्तन है या उसका वास्तविक स्वरूप जो अब अवसर पाकर खुला है। एक समय वह था जब उसके असीम प्यारकी अजस्र वर्षामें भीगकर स्वतः मेरे मनमें न जाने कितने गीत गूँज उठे थे। मैं नाराज़ हो जाता था तो उससे अच्छी तरह खाना नहीं खाया जाता था। मुझे उस दिनकी याद है जब मेरे लिए वह अड़तालीस घंटे भूखी रही थी। दो दिनको बाहर गया था तो रोने लगी थी यह अठारह वर्षकी लड़की, "भैया तुम तो सब जगह घूमके चले आते हो—हमारा यहाँ मन नहीं लगता। वह सब क्या था ? उसकी सेवा, भूखा रहना, रूठना और जिस दिन भैयासे दो घंटे मनकी बातें न कह सुन लेना, उस दिनको व्यर्थ समझना —क्या था वह सब ? छलना ? प्रवंचना ? और उन्हीं स्वप्नोंकी माधुरीमें डूबता-उतराता अन्धा बना मै आगया हूँ यहाँ ! उफ़ ! करवटसे मुझसे लेटा नहीं जाता। इच्छा होती है उठकर बैठ जाऊँ। एक दुर्निवार तनाव अपनी शिराओंमें मैं अनुभव कर रहा हूँ।

विश्वास मानो, अनुभवकी बात कह रहा हूँ। इन लड़कियोंका विवाह जब अपनेसे बड़े परिवारमें करो तो निश्चय रखो कि अब हमारा सम्बन्ध टूट रहा है। और ये लड़कियाँ हैं कि इनके सारे हित, सारे स्वार्थ, सारे लाभ, सारे सत्य एक दिनमें उस अनजान जगह जा पहुँचते हैं और बाहरी या बीता हुआ सब झूठ हो जाता है।

उस समय मैंने इससे प्रेरणा लेकर कितनी कहानियाँ लिखी थीं, कितनी कविताएँ इसके व्यक्तित्वकी छाप लेकर मेरे निकट अमर बन गई हैं।

लेकिन वह कुछ नहीं, सब धोखा था, झूठ था। जाते ही पहिला काम होगा उन्हें फाड़-फाड़कर अग्निको समर्पित करना। क्षणिक आवेशमें जन्मी वस्तुका यही होना चाहिये।

हेम, बिदा दो, मैं जा रहा हूँ! तुम्हें मालूम भी न होगा कब मैं रेलमें चढ़ जाऊँगा। मालूम होनेकी आवश्यकता भी नहीं है। तुम्हारे सामने आनेको भी मन नहीं करता। ओ स्वार्थमयी, जब तुझे मेरी आवश्यकता थी मैंने तुम्हें सहारा दिया—अपने आपको तुम्हारे उठानेके लिए सीढ़ी बना दिया। अब अपने पतिके साथ तुम सुखी रहो, यही कामना है। जब भी तुम्हें मेरी आवश्यकता हो मेरे पास आना, मेरा द्वार मुक्त है। मैं जा रहा हूँ, बहुत कुछ लेकर उस सबको कैसे अभिव्यक्त करूँ? उपेक्षा और निराशाकी कटुतासे मेरी नसनस विषाक्त हो उठी है। अब अपने यथार्थ भावोंको छिपानेकी कायरता मुझसे नहीं हो सकेगी। मैं जा रहा हूँ, एक असीम वितृष्णा लेकर, एक उत्कट अमाप घृणा लेकर एक ऐसा क्षोभ, द्वन्द्व लेकर जो मेरे मनपर बोझ-सा जमकर बैठ गया है और मैं कह नहीं पाता और जो मेरे ख़ूनके कण-कणमें तीव्र पिघले सीसेकी भाँति फैला जा रहा है। जा रहा हूँ, अब तुमसे मिलनेकी कोशिश नहीं करूँगा, लहरमें बहते हुए कभी आ भिड़े तो देखा जायेगा। उपवनकी सुरभिमें तुम वनके समीरको भूल जाना—भूल तो गई ही हो! मैं भी अब कभी तुम्हारा ध्यान करनेका प्रयत्न नहीं करूँगा। लेकिन उस घृणाको जो आज तुमने जगा दी है, निकालनेमें मैं अपने आपको असमर्थ पा रहा हूँ। मालूम नहीं इसका विस्फोट मेरी कलाकी किस-किस दिशामें होकर उसे विकृत करेगा। इतना विश्वास है हेम, अब तुम्हारी प्रेरणा लेकर मै कुछ नहीं लिख सकता। यह यथार्थ है।

एक घंटा मुझे हल्का सुनाई पड़ता है। मालूम नहीं एकका है साढ़े बारहका या डेढ़का। मैं चौंककर सीधा लेट जाता हूँ। चाँदकी ओर देख रहा हूँ, जहाँ चाँदके ऊपरसे बादलोंके टुकड़े फिसले चले जा रहे हैं।

मेहँदीकी बौर गमक रही है, धरतीकी साँसें स्वप्नकी परियोंकी तरह सुनहली धूलमें खेलती हैं।

हिश्! क्या बेकारकी बातें सोचनेमें मैं लगा हूँ। इन बातोंका भी अन्त है। चाहे जितना सोचे चले जाओ इन्हें। इनमें अपना मस्तिष्क ख़राब करना है। चाँद कितनी सुन्दरतासे चमक रहा है।

और अपने थके-माँदे मस्तिष्कको ताज़ा करने, विश्राम देने, अपनी एक कविता गुनगुनाने लगा हूँ। बड़ी भावुकतामें आकर मैंने यह कविता लिखी थी। एक अद्भुत शान्ति मुझे इसे पढ़नेसे मिलती है—

मध्य निशाकी स्तब्ध सरित-तट
ज्योतित स्वर्णिम किरण डालपर
एक विहग बैठा गाता था!
जिसके मधुमय मदिर स्वरोंकी
थपकी खाकर धीरे-धीरे
नींद हिंडोला झूल रहा था!
और खो रही संज्ञहीन-सी, मन्त्रमुग्धसी
संसृति अवचेतन सपनोंमें!
चाँद हँस रहा था सोनेकी तरणी-सा नीले सागरपर।

कविताके रसमें विभोर होकर मैं सोचता हूँ ऐसे परमानन्दकी अनुभूति क्या कोई वैज्ञानिक कभी कर सकता है! कभी नहीं! उसे चाँदमें ऐसी मोहाच्छन्न रहस्यमयता कभी कल्पनामें भी नहीं दिखाई दे सकेगी। वे इसका सुन्दर रूप क्या जानें? उनके लिए तो पृथ्वीकी तरह वह भी एक स्थान है—जहाँ पहाड़ हैं, नदियाँ हैं, वन हैं, जीव-जन्तु हैं, मानव हैं और जो सूर्यके प्रकाशसे चमकता है। इसमें क्या सुन्दर? सौन्दर्यके स्थानपर वह जिज्ञासा और विश्लेषणकी अधिक वस्तु है।

क्या इन सब बातोंको मैं नहीं जानता? फिर जानबूझकर अपनेको धोखा देनेका प्रयत्न क्यों? क्यों, फिर चाँदमें यह रहस्यमयता, काल्प-

निकता और भावनाओंका बलात् आरोप? क्यों यह व्यर्थका तूमार और शब्दजाल? इस भ्रमसे आनन्दकी प्रवृत्ति क्यों? लेकिन हमें क्या? यह वैज्ञानिकोंका दृष्टिकोण है। वे वस्तुका काला रूप ही देखते हैं। उसकी कुरूपताका ही यान्त्रिक विश्लेषण करते हैं, निर्जीव। कलाकार इसके विपरीत है। वह उज्वल पक्ष देखता है। सौन्दर्य और महानतामें विश्वास करता है। विकृत यथार्थके प्रति उसकी आसक्ति नहीं है—वह उदात्त है।

और हठात् मैं अनुभव करता हूँ कि प्रकाशका एक तीर विचारोंकी कालिमाको वेधता हुआ चला जा रहा है—बढ़ा जा रहा है, भीतर-गहरा! फिर हेमके प्रति यह वैज्ञानिकोंवाला विकृत यथार्थके विश्लेषणका दृष्टिकोण क्यों?

और सारी बात मेरे सामने स्पष्ट हो रही है, प्रेम क्या है? केवल अपनी भावनाओंको प्यार करना, और उन भावनाओंको उत्तेजित करनेवाले साधनको साध्य मानना। हेमके प्रति दृष्टिकोण?—चाँदके प्रति वैज्ञानिकका दृष्टिकोण? यदि विश्व-साहित्यसे चाँदका यह सुन्दर रूप निकाल लिया जाय तो शायद हज़ारों कविताएँ व्यर्थ हो जाएँ।

तो मैं चला जाऊँ? . . . . और प्रश्न मेरे सामने सरल हो रहा है।

हाँ हेम, मैं जा रहा हूँ—लेकिन मेरा तेरे प्रति दृष्टिकोण . . . .

"जब कला मर गई थी"

एक समयकी बात है कि एक राजकुमारी अपनी सखियों और दासियों-को लेकर अपने राज्यके सबसे सुन्दर वनमें सैर करने गई। ऋतु पावसकी थी और प्रकृति अपने यौवनपर थी। पृथ्वी लम्बी-लम्बी हरी घाससे हुलस रही थी। पेड़ जैसे फूल और पत्तियोंके बाहुल्यसे लदकर बड़े-बड़े कुंज बन गये थे। आकाशपर बादलोंके हिंडोले झूल रहे थे।—जब वे सब रमणियाँ उसमें रंगबिरंगे पुष्पों और तितलियोंकी भाँति थिरक उठीं तो वनका सौन्दर्य शतगुणित हो उठा। राजकुमारीने कमलोंसे भरे हुए तालाबमें जल-केलि की, वह मंजरित आम्रडालपर झूला डालकर झूली और उन सघन कुंजोंमें आँख-मिचौनी खेली। पक्षी चहचहा रहे थे, कोयल कूक उठती थी और मोर नाचते थे। खेलते-खेलते राजकुमारी वनके प्रगाढ़ तममें स्थित एक छोटी-सी लता-वल्लरियोंसे लदी-खिली कुटीके सामने जाकर ठिठक गई। कुटीके किवाड़ बन्द थे। तभी पीछेसे उसकी और सहेलियाँ आ गईं।

"दूरसे यह स्थान एक घना कुंज-सा दिखाई देता है, यहाँ कौन रहता होगा ?" आश्चर्य, कौतूहल और जिज्ञासासे राजकुमारीने अपनी सहे-लियोंसे पूछा, और स्वयं द्वारपर धक्का देने आगे बढ़ी।

तभी एक सहेलीने उसके सामने आकर कहा—"राजकुमारी, इसमें अपने राज्यके—और मैं समझती हूँ इस समय समस्त आर्यावर्तके—सर्वश्रेष्ठ चित्रकार प्रमथ रहते हैं। न मालूम इस समय संसारकी किस श्रेष्ठ कृतिका निर्माण हो रहा होगा, मैं प्रार्थना करूँगी किवाड़ोंमें धक्का देकर आप उस तपस्वीकी साधना भंग न करें।"

राजकुमारी रुक गई, पर आश्चर्यसे जैसे उसके नेत्र स्फीत हो उठे।

सर्वश्रेष्ठ चित्रकार इस विजनमें ! प्रमथकी प्रशंसा एक-दो नहीं सैकड़ों बार वह इधर-उधर सुन चुकी थी। जब तक कुटीके कपाट खुलेंगे, वह आतुर प्रतीक्षा करेगी।

कुछ समय पश्चात् कुटीके कपाट हठात् खुले, और एक मानव मूर्ति झपटकर बाहर आई। एक बार फटे और करुण कंठसे चिल्लाई "भूख ! भूख ! भोजन !" और फिर मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। ये सब लोग आश्चर्यचकित स्तब्ध, भीत-सी देखती रह गई। कुछ क्षण पश्चात् स्वस्थ हुई। उसके उपचारको दौड़ीं। राजकुमारीने देखा, एक अत्यन्त सुन्दर युवा, कन्धेतक बिखरे हुए बाल, श्मश्रु, केवल धोती पहिने हुए, स्वर्णिम शरीर, सुन्दर मुख ! राजकुमारीने देखा, और देखती रह गई। फिर जैसे चौंककर शुश्रूषाको दौड़ी। प्रमथने आँखें खोलीं, सचेत हुआ। उसे बड़े स्नेहसे खाना खिलाया गया। तब कहीं जाकर वह स्वस्थ हुआ।

कृतज्ञताके भारसे झुककर उसने कहा—"किन शब्दोंमें राजकुमारी, मैं आपका आभार प्रदर्शित कर सकूँगा, मै नहीं जानता ! "

"नहीं चित्रकार, इसकी कोई आवश्यकता नहीं।" राजकुमारीने संकुचित होकर कहा। उसकी प्रलम्बित पलकें नीचे झुक गई।

"आइये, राजकुमारी, मैं आपको वह चित्र दिखाऊँ, जिसे पिछले सप्ताहसे निरन्तर भूखा रहकर, प्याससे तड़पकर मैं बना रहा हूँ। आज वह पूर्ण हुआ....पर....आइये-आइये।" और आगे-आगे चित्रकार प्रमथने कुटीमें प्रवेश किया, पीछे-पीछे राजकुमारी, तब सहेलियाँ।

प्रवेश करते ही राजकुमारी जैसे, स्तम्भित, मन्त्रमुग्ध, चमत्कृत और विमूढ़-सी खड़ी रह गई। सामने आयताकार पटल पर प्रायः अस्पष्ट प्रकाशमें जो चित्र अपनी सम्पूर्ण सौन्दर्य-ज्योतिसे झिलमिला रहा है और जिसने राजकुमारीके तन और मनको हठात् निश्चेष्ट विज-

ड़ित कर दिया है वह जैसे उसकी आँखोंमें समाकर रह गया है और वह बँधी-सी खड़ी रह गई है—निश्चल !

"ओफ़ कितना सुन्दर चित्र है !" उसकी अन्तरात्मा उसके ओठ खोलकर जैसे स्वयं चहक पड़ी—"कला जैसे साकार हो गई है।" सखियों-ने मुक्त-कंठसे उसका समर्थन किया।

"चित्रकार-संसारकी सर्वश्रेष्ठ कृतिके अभिनन्दनमें मेरी बधाई स्वीकार करो।" आवेशसे राजकुमारीने प्रमथके दोनों हाथ पकड़ लिये।

प्रमथने राजकुमारीकी आँखोंमें देखा। देखा, और देखता रहा, फिर सहसा उसके दोनों हाथ ढीले हो गये, मुखपर उदासीका आवरण छा गया। दीर्घ श्वास खींचकर उसने कहा—"पर राजकुमारी, मुझे अपनी इस कृतिपर सन्तोष नहीं है।"

"सन्तोष नहीं है?" अथाह आश्चर्यसे राजकुमारीने दुहराया, फिर कहा—"चित्रकार, ऐसी बात मत करो, यह संसारका अभूतपूर्व चित्र है। स्वर्णके स्तूपपर खड़े होकर तुम पुष्पोंसे लद जाओगे चित्रकार।"

"नहीं राजकुमारी मुझे इससे सन्तोष नहीं है।" और जैसे शिथिल होकर वह 'धम्'से पृथ्वीपर बैठ गया।

राजकुमारीके मुखपर पीड़ाकी रेखाएँ साकार हो गईं। वह चित्रकारके पास बैठकर अनुरोधसे उसकी ओर देखने लगी। आर्द्रस्वरमें सहानुभूतिसे उसने कहा—"चित्रकार, तुम निराश हो।"

चित्रकारकी आँखें सजल हो गई—"नहीं राजकुमारी, मैं निराश नहीं हूँ। पर राजकुमारी, मुझे सन्तोष नहीं होता। एक सप्ताहसे अविराम निरन्तर और अथक परिश्रम करके मैं चित्र बना रहा हूँ किन्तु मुझे सन्तोष नहीं है, हृदयमें कोई है कि तृप्त नहीं होता। यह नई बात नहीं है। ऐसा न जाने कितने वर्षोंसे होता चला आ रहा है। हृदयमें जैसे कोई भूख है, दुर्निवार, अदम्य बड़ी मीठी, न जाने क्या वह चाहती है—सौन्दर्य !—प्रेम !—माधुर्य ! न जाने क्या? उसीके वशीभूत होकर मैं निरन्तर

चित्र बनाता आ रहा हूँ। प्रत्येक नूतन चित्र बनानेके पश्चात् मुझे लगता है, उसमें कहीं कमी है, अभाव है, कसर है ? और फिर नूतन उत्साहसे मैं दूसरा बनाता हूँ—दृढ़ निश्चय करता हूँ कि दूसरे चित्रमें किसी प्रकारकी कमी नहीं होगी; पर हाय ! चित्र पूर्ण होते ही मुझे लगता है कि इसमें कुछ अभाव है, कमी है, और झुँझलाकर मैं उसे एक ओर पटक देता हूँ। यह अभाव क्या है, कैसी मरीचिका है—मैं समझ नहीं पाता।" और उसने कुटीमें एक ओर रखे चित्र-फलकोंके ढेरको देखा।

"लेकिन चित्रकार, इस अभावको तुम समझोगे—एक दिन।"

"नहीं राजकुमारी नहीं,—कभी नहीं ! एक अभावकी पूर्तिका प्रयत्न नये अभावोंका सृजन करता है। मैं आज जब आँखें खोलकर अपने चारों ओर देखता हूँ, तो मुझे अनुभव होता है, इस अभावके लिए कितने अभावों-को मैंने अपने चारों ओर जमा कर लिया है। राजकुमारी, मैं आज सात दिनसे भूखा, न जाने कितने दिन मुझे भूखा रहना पड़ा है, इसीने मुझे भिक्षा माँगनेको विवश कर दिया है—संसारका सबसे बड़ा अभाव ? राजकुमारी, मुझे अपनी नित्यकी आवश्यकताओंका अभाव है, मेरी कलामें अभाव है मेरे जीवनमें अभाव है ! विकट अभावका यह शून्य गह्वर आज अपनी समस्त विकराल दाढ़ें खोले....! राजकुमारी, मैं अकिंचन हूँ....।" और मुँहपर दोनों हाथ रखकर प्रमथ फूट-फूटकर हिचकियोंमें सिसक पड़ा।

राजकुमारीने उसके सिरको अपने वक्षसे लगा लिया—"छिः चित्र-कार, तुम दुर्बल !" चित्रकार जैसे दुगने ज़ोरसे रो उठा। बड़ी देरमें प्रमथके हृदयका वेग थमा। वह सँभलकर बैठ गया और अन्यमनस्क-सा एक ओर देखने लगा।

राजकुमारीने सान्त्वना देते हुए मधुर स्वरमें कहा—"चित्रकार इतना तो मैं फिर भी कहूँगी, भूख और पीड़ामें रहकर भी तुमने वह चित्र

तैयार किया है, जिसपर युगोंतक विश्वके चित्रकार ईर्ष्या करेंगे।" और उसने एक ओर मिट्टीके सकोरोंमें रखे रंगोंको देखा।

कुछ क्षण सोचते रहकर चित्रकारने गहरी साँस ली—"राजकुमारी, अभाव—शारीरिक और मानसिक —दुर्दैवका सबसे बड़ा अभिशाप है। मैं जानता हूँ क्यों मैं अपनी कलाके इस अभावको दूर नहीं कर सका—क्योंकि अपने इन शारीरिक और मानसिक अभावोंसे मैं अवकाश नहीं प्राप्त कर सका। काश! मनुष्यका पेट न होता, और तुम जैसी सर्वाङ्ग-सुन्दरीका वरद-हस्त मेरे सिरपर होता तो मैं बताता कि वह कृति कौन-सी होती है, जिसपर विश्वके चित्रकार युगोंतक ईर्ष्या करते हैं।" और असामर्थ्य-की एक पैनी-सी कराह उसकी छातीको चीरकर बाहर निकल आई।

"...मैं? सर्वाङ्ग सुन्दरी..." राजकुमारी जैसे संकोचसे सिमिट, गई—लज्जाकी लाली उसके सारे मुख-मंडलपर परिव्याप्त हो गई।

विस्मृत-विमुग्ध दृष्टिसे अपलक उसकी ओर देखते हुए प्रमथने कहा—"हाँ, तुम—विश्वका साकार सौन्दर्य, मेरी मूर्त कल्पना।" और अगले शब्द जैसे उसके हृदयमें उच्छ्वसित होकर रह गये।

बातोंका विषय बदला और तरह-तरहकी बातोंमें ही राजकुमारीने कहा—"चित्रकार, तुम मेरे साथ चलोगे? मेरी बड़ी इच्छा है कि तुम एक ऐसी कलाकृति दो, जिसपर संसारके कलाकार युगोंतक ईर्ष्या करें। मुझे विश्वास है तुम अपने इस चिर अपूर्ण अतृप्त अभावसे भी तभी छुटकारा पाओगे।" और 'भ्रम'से जैसे राजकुमारीके सारे कपोल कनपटी मर्मान्तिक लज्जासे रक्ताभ हो उठीं। तत्क्षण उसने स्पष्ट किया—"मैं चित्रके विषयमें कह रही हूँ।" सरल अनुरोधसे आग्रह किया—"बोलो!"

चित्रकारने देखा—एकटक—राजकुमारीकी निश्छल और निर्विकार आँखोंमें उषाका नवजीवन और ज्योत्स्नाका मदिर लावण्य लहरें ले रहा है!

× × ×

और राजाकी आज्ञासे उपवनके मध्यमें बने सुन्दर भवनके एक कक्षमें उसने अपनी चित्रशाला बनाई। संसार भरके समस्त उपकरण उसके लिए वहाँ प्रस्तुत थे। सारे संसारसे निश्चिन्त होकर वह एक श्रेष्ठ चित्रके विषयमें मनन करने लगा। यह उपवन राजकुमारीका विशेष उपवन था। उसने चित्रकारको पूर्णतः सन्तुष्ट करनेका प्रयास किया था; अच्छे-से-अच्छे भोजन जिनकी वह स्वप्नमें भी कल्पना नहीं कर सकता था। उसके तनिक-सा उन्मन होनेपर उसके चारों ओर कल्पनातीत वाद्ययन्त्रोंकी स्वरलहरियाँ नूपुरकी तालपर झमक उठतीं और आँखोंमें अथाह विस्मयका भाव भरे वह स्तब्ध बैठा पहिचाननेका प्रयत्न करता कि यह सब स्वप्न है, अथवा जागरण। राजकुमारी हाथमें हाथ दिये प्रातः-काल नित्य ही उसे उसकी चित्रशाला तक पहुँचाने आती! फिर उस चित्रशालामें एकान्तमें बैठकर प्रमथ उस चित्रके विषयमें मनन करता। सन्ध्याके समय दासीके हाथों हल्के जलपानका सामान लिये, ओठोंपर विश्व-विमोहिनी मुस्कानसे राजकुमारी नित्य उसका अभिनन्दन करती। एक दिन चित्रकारने बताया कि आज उसने वह चित्र बनाना प्रारम्भ कर दिया है।

उस दिन राजकुमारी बड़ी प्रसन्न होकर उसे चित्रशालाके द्वारतक पहुँचा गई। चलते समय उसने चित्रकारके हाथको बड़े स्नेहसे दबाया। एक अलौकिक प्रेरणासे अनुप्राणित चित्रकारने कक्षमें प्रवेश किया। राजकुमारी बड़ी आकुल होकर सन्ध्याकी प्रतीक्षा करती रही। सन्ध्या-को स्वयं जलपानका सामान उठाये वह चित्रशालाके द्वारपर आ खड़ी हुई। चित्रकार निकला। मुस्कराकर राजकुमारीने उसका स्वागत किया। वह खिल उठा, जैसे सारी थकावट मनसे दूर हो गई हो।

और नित्य यही क्रम चलने लगा।

एक दिन चित्रकारने कहा—"आज मेरे चित्रकी रूप-रेखा पूर्ण हो जायगी।"

राजकुमारी उस दिन जैसे विशेष उल्लाससे चहक उठी। संध्या-को जब चित्रकार निकला तो बेसुधसी होकर उससे लिपट गई। चित्रकार-का मुख सद्यः उत्फुल्ल कमलकी भाँति खिला हुआ था। इतना प्रसन्न अपने जीवनमें वह शायद कभी नहीं हुआ।

"मुझे विश्वास है प्रमथ, इस बार तुम अपने जीवनकी सर्वश्रेष्ठ कृति तैयार करोगे—आज तुम्हें सन्तोष है—तुम्हारा चिर अभिलषित सन्तोष ?"

दोनों कक्षमें गये।

"हाँ राजकुमारी, आज मुझे सन्तोष है। आज मेरे हृदयका कलाकार तृप्त हुआ है। विश्व-चित्र इतिहासमें अभूतपूर्व और अकेली वस्तु इस बार वह देगा।" गर्वसे चित्रकारका मस्तक तन गया। "युगोंतक चित्र-कार जगत् ईर्ष्या करेगा। आओ तुम्हें दिखाऊँ" और प्रसन्नतासे जैसे उसका अंग-अंग फड़क उठा—"मुझे सन्तोष है ! मुझे सन्तोष है !"

"यदि दो चित्र भी मैं अपने सम्पूर्ण जीवनमें ऐसे बना जाऊँ तो सर्वग्रासी कालमें भी इतनी शक्ति नहीं रह जाये जो मेरे अमरत्वके इस गौरवको छीन सके" आवेशसे चित्रकारने राजकुमारीको बाँध लिया—"यद्यपि यह चित्रकी केवल रूपरेखा है, फिर भी मुझे सन्तोष है। बहुत शीघ्र ही मैं इसे पूर्ण करूँगा।"

"तो करो न !" राजकुमारी विभोर हो उठी।

× × ×

राजकुमारीने कई बार पूछा—"क्यों चित्रकार कब करोगे इसे पूर्ण ?"

"करूँगा, शीघ्र ही" विश्वाससे प्रमथ कहता—"थोड़े दिन विश्राम कर लूँ, मनन कर लूँ" रंगोंका चयन करना है—कई बार चित्रशाला गया, अभी मनःस्थिति नहीं है। बनाऊँगा तो उसे सम्पूर्ण मनसे बनाऊँगा बेगार नहीं।"

समय बीता।

राजकुमारी नित्य पूछती, देखती प्रमथ नित्यप्रति उदास होता चला जा रहा है। वह स्वयं चिन्तित थी—पूर्ण चित्र ! पूर्ण चित्र !

एक वर्ष बीत गया।

झुँझलाकर कहा—"चित्रकार तुम कैसे जड़ हो गये हो।"

चित्रकार हँसा। फिर किसी गहनतम विचार-वीथिकामें जाकर खो गया—उदास और पीला मुख।

और एक दिन सारे राज्यमें कोलाहल मच गया, चित्रकार खो गया प्रमथ ग़ायब है। राजाके चर खोजने निकले। राजकुमारी वन-उपवनमें भ्रान्त, उन्मत्तकी भाँति खोजती फिरी—"ओ चित्रकार, ओ चित्रकार, तुम्हारा सर्वश्रेष्ठ चित्र कहाँ है ?"

एक दिन राजकुमारीने देखा, एक पेड़के नीचे एक मनुष्य बैठा खुरपेसे घास खोद रहा था। पास गई—"अरे चित्रकार प्रमथ।" बिखरे बाल मैला शरीर। पागल राजकुमारी उस ओर दौड़ी—"चित्रकार।"

चित्रकार उठकर खड़ा हो गया, घूमा और कड़ककर बोला—"ख़बरदार राजकुमारी, मेरे पास मत आना।"

"तुम्हारा चित्र,—सर्वश्रेष्ठ कृति !" राजकुमारी होशमें नहीं थी।

"नहीं राजकुमारी, मेरी सर्वश्रेष्ठ कृति वे थीं जो मैंने अभाव और पीड़ामें बनाई थीं—और बनाता चला गया। यह चित्र मेरी सर्वश्रेष्ठ कृति कभी नहीं है, जिसे एक बार बनाकर पूर्ण नहीं कर पाया। क्योंकि तुमने मेरे अभावोंको दूर कर दिया। उनकी पूर्तिकी खोजमें निरन्तर प्रयत्नशील मेरी कल्पनाके पंख तोड़ दिये—मेरे कलाकारकी हत्या की। कला महलोंमें नहीं पलती। अभावमें गति है, और गति कलाका प्राण है।"

अंगारोंका खेल

पत्र नं० १—

सम्पादकजी,

मेरे मित्रके ये कुछ पत्र काफ़ी दिनोंसे मेरे पास रखे हैं। इनमें एक समस्या है, एक गाँठ है। शायद इसे आपके पाठक सुलझा सकें। वे मेरे अन्तरंग मित्र हैं, और किसीको न दिखानेके विश्वासपर ही ये पत्र मुझे दे गये थे। पात्रोंके नाम बदलकर मैं इन्हें आपके पास भेज रहा हूँ। अन्तिम पत्र उन्होंने मुझे लिखा था। उसे भी जितना आवश्यक समझा है साथ लगा दिया है। देखें आपके पाठकोंके क्या विचार हैं?

भवदीय—नलिन

पत्र नं० २—

प्रिय हेम,

कल जबसे मुझे मालूम हुआ है, सच, कितना दुख हो रहा है, मैं कह नहीं सकता। तुमसे मुझे ऐसी आशा नहीं थी। लज्जा स्त्रीका भूषण है, पर झूठी लज्जा नहीं। फिर उन बातोंके विषयमें जिनका हमारे जीवनसे अविच्छिन्न सम्बन्ध है, लज्जा सदैव ही अभिशाप सिद्ध हुई है। मुझे विश्वास था कि यह बात मैं सीधे तुमसे ही सुनूँगा, पर जब कल माताजीने बताया कि दो-तीन महीने हो गये, तुम्हारे विवाहकी बात बहुत कुछ निश्चयात्मकता लिये हुए चल रही है, तभीसे एक प्रकारकी जड़ता, औदास्य मस्तिष्ककी शिराओंमें भर उठा है। क्या इस बातकी सूचना भी नहीं दी जा सकती थी?

अब क्या मैं आशा करूँ कि तुम सविस्तार सब लिखोगी और यदि

बात वास्तवमें ऐसी ही है कि मुझसे छिपाई जाय तो मुझे कुछ भी आग्रह नहीं है। किन्तु जब मैं सोचता हूँ तो दुख इस बातका होता है, कि तीन वर्षके निरन्तर सम्पर्कपर भी न तो तुम मुझपर इतना विश्वास कर सकीं, और न इतना खुल सकीं, जब कि शायद मेरे हृदयके अन्तर्तममें भी कोई ऐसा कण नहीं है, जिसे तुम न जानती हो। और क्या लिखूँ, आशा है तुम प्रसन्न होगी। समय मिले तो पत्रका उत्तर शीघ्र देना।

तुम्हारा—शैलेन्द्र

पत्र नं० ३—

आदरणीय भैया,

आपका पत्र मिला। मैं स्वयं क्या लिखूँ. झिझक होती है। कभी लिखा नहीं। मुझे आपको अपनी कोई भी बात बतानेमें कभी भी आपत्ति नहीं रही। मेरी ओरसे आप ऐसा मत सोचा कीजिये। एक तो इस विषयमें स्वयं मुझे नहीं मालूम कि बाबूजी और माताजी क्या कर रहे हैं, दूसरे अभीतक मेरा विश्वास था कि विद्यार्थियोंको इन बातोंसे दूर रहना चाहिए। आप विश्वास रखिये, मालूम होते ही मैं आपको अवश्य लिखूँगी।

पिछले तीन वर्षोंकी बातें आप क्यों याद दिला देते हैं। मन उदास हो जाता है। यहाँ अब जीवन बड़ा नीरस और जड़-सा लगता है। स्कूल-में मन लड़कियोंके साथ तो भी थोड़ा-बहुत वहल जाता है, वैसे माताजीका स्वभाव तो आप जानते ही हैं। इधर उनके स्वभावकी कटुता (कर्कशता) और भी बढ़ गई है। जब देखो किसी न किसीको पीटना, ताड़ना, अकेले बड़-बड़ाना। मैं होती हूँ तो मेरे ऊपर सारा उबाल उतारती हैं। बोर्डकी परीक्षा है, न जाने कैसे होगा? भैया, कैसे थे वे दिन, आप तो अब प्रसन्न होंगे। और कुछ लिखिये। हाँ, इतना मुझे मालूम है कि बातें तेज़ीसे हो रही हैं।

आपकी—हेम

पत्र नं० ४––

प्रिय हेम,

पत्र पढ़ा, मैंने तुम्हारे ऊपर सदासे विश्वास किया है। अब भी कर रहा हूँ। यह मुझे भी मालूम है कि विद्यार्थियोंको इन बातोंसे दूर रहना चाहिये। किन्तु भविष्य, जो आपकी समस्त सत्यतासे अत्यन्त निकट आ गया है, उसकी ओरसे तो उदासीन नहीं रहा जाता। जीवन इस प्रकार लापरवाहीकी वस्तु नहीं है। तुम स्वयं समझदार हो, अपनेको चाहे तुम कुछ भी समझती रहो, पर मैं जानता हूँ, सत्रह वर्षकी लड़की ख़ूब समझती है। फिर तुम्हारे पढ़नेसे लाभ ही क्या है? नहीं, भविष्यकी ओरसे इस प्रकार उदासीन बनना ठीक न होगा।

हेम, मैंने सदासे तुम्हें अपने हृदयका सम्पूर्ण स्नेह दिया है। मेरी इच्छा है इस विषयमें मैं तुम्हारी कुछ सहायता करूँ।

अपनी माताजीके स्वभावको तुम सदासे जानती हो। उसके लिए अपने स्वास्थ्यको क्यों ख़राब किये देती हो? इस प्रकार कैसे काम चलेगा? तुम्हें उनकी किसी बातपर ध्यान ही न देना चाहिये। और पिछली बातें–– हेम, याद उनकी मुझे भी आती है। कैसे हँसते खेलते वे दिन निकल गये।

एक बात मैं तुमसे पूछता हूँ, आशा है, शीघ्र उत्तर दोगी। तुम विवाह-को क्या समझती हो? वह शारीरिक सम्बन्ध है या मानसिक बन्धन। विवाहके विषयमें अपने सम्पूर्ण विचार लिखो। बिना तनिक भी छिपाये और बिना झिझके। नवीन समाचार हों तो वे भी। तुम मुझसे केवल एक वर्ष छोटी हो, मैंने तुम्हें कभी भी छोटा नहीं समझा। आशा है बिना किसी हिचकिचाहटके साथीकी भाँति सब बताओगी।

तुम्हारा––शैलेन्द्र

पत्र नं० ५––

आदरणीय भैया,

आपने इस बार ऐसी बातें पूछी हैं, जिन्हें मैंने स्वयं कभी सोचा भी

नहीं है। जब आप इतना ज़ोर दे रहे है तो मैं अपने भविष्यके विषयमें सोचूँगी। किन्तु क्या सोचूँ---समझमें नहीं आता। सोचते ही अपने अज्ञात भविष्यके प्रति एक प्रकारकी विचित्र भय-मिश्रित जिज्ञासा सारे शरीरकी शिराओंमें तरल सिहरन भरकर चमक उठती है। किन्तु जितना मैं यहाँ सुन रही हूँ उससे मुझे अपना भविष्य न जाने कैसा लगने लगता है। हाँ, एक बात मैं आपको बताऊँ, जिनके लिए बातें हो रही हैं, उनका एक चित्र तथा कुछ परिचय-सा बाबूजीने मौसाजीके पास शायद सलाह लेने भेजा है। उसीसे आपको सब बातें मालूम हो जायँगी। तब हो सके तो कुछ सलाह दीजिये। मुझे अभी सब बातें ठीक मालूम नहीं हुई हैं, इसलिए नहीं लिख रही।

आपने मेरे विषयमें अविश्वासकी बातें लिखी हैं। भैया, ऐसा क्यों करते हो? मैंने तुम्हारे अतिरिक्त किसीपर भी विश्वास नहीं किया। पत्र लिखो, पढ़ाई कैसी चल रही है? पत्रका उत्तर दीजिये।

आपकी---हेम

पत्र नं० ६---

प्रिय हेम,

बाबूजीके डेस्कमें रखी मैंने सब चीज़े देखीं। वैसे मुझे मालूम तो पहिले हीसे माताजी इत्यादिके मुँहसे पड़ गया था कि वे सज्जन पूनाके निवासी हैं, और दूसरा विवाह है। किन्तु इससे और भी बातें मालूम हुई---शायद तुम्हें न मालूम हों, इसलिए लिख रहा हूँ। पूनाकी किसी कम्पनीके एजेण्टकी हैसियतसे वे बम्बई ही अक्सर रहते हैं। पहिली पत्नी अशिक्षित थीं, इसलिए उन्हें छोड़ दिया। अब विश्वास दिलाते हैं कि उनके मनोनुकूल शिक्षित सभ्य लड़की मिल गई तो बम्बईमें ही कोई बँगला खरीद लेंगे। कार इत्यादिकी तो कोई बात नहीं है। रुपयेकी कोई कमी नहीं है। फ़ोटो देखनेसे उम्र उनकी चालीसके ऊपर लगती है। बैठनेका ढंग और हाथकी सिगरेटकी पकड़ देखकर अपने मनोवैज्ञानिक

अनुभवोंके आधारपर मैं कह सकता हूँ कि चरित्रके विषयमें यह आदमी कुछ ढीला है। फिर बम्बई जैसे शहरमें जिसे रुपयेकी कमी न हो, उसके लिए हार्सरेस और ब्रिजके साथ 'ड्राइजिन' या 'रम' बिलकुल साधारण-सी बातें हो जाती हैं। यह उनके विषयमें है, घर इत्यादिपर मैंने कोई ध्यान नहीं दिया।

हेम, इस फ़ोटो, परिचयकी तुलना तुम्हारे साथ कर देनेपर न जाने कैसी एक प्रकारकी उदासी मेरे हृदयसे उठ-उठकर ऊपर आने लगती है। न जाने क्यों मुझे तुम्हारा भविष्य कुछ अधिक अच्छा नहीं दिखाई देता। स्पष्ट तो यह है कि यह दूसरा विवाह मुझे पसन्द नहीं है। हेम, जीवन यों विनोद और खेलकी वस्तु नहीं है। मुझे लगता है कि उसके धनने तुम्हारे बाबूजी और माताजीको चौंधिया दिया है।

तुमने लिखा है कि मुझे ये बातें थोड़ी-सी मालूम हुई हैं। फिर तुमने मुझे क्यों नहीं लिखा? यह इतना छिपाव क्यों? सच बताओ हेम, क्या तुम्हें मेरा बीचमें आना बुरा लग रहा है? यदि ऐसी बात है तो मैं बिलकुल हटा जाता हूँ। पर एक शुभेच्छा थी, तुम्हारी कुछ सहायता करनेकी। तुम्हें कुछ आवश्यकता हो तो निस्संकोच माँग सकती हो।

तुम्हारा—शैलेन्द्र

पत्र नं० ७—

आदरणीय भैया,

आप समझते हैं, मुझे आपका बीचमें आना बुरा मालूम होता है। पर वास्तवमें बात यह नहीं है। कुछ बात ही नहीं है जो लिखूँ। आप न जाने मुझे क्या समझते हैं, शायद सोचते हैं कि न जाने मैं कितना सोचने लगी हूँ। पर ऐसी बात भी नहीं है। सोचना मुझसे कभी आया ही नहीं। मेरी बातोंका आप बुरा मत माना कीजिये। फ़ोटो मैंने केवल एक सरसरी दृष्टिसे देखी थी। आपकी सब बातें ठीक हैं। मेरे मनमें भी पहिले यही विचार उठे थे। छोड़ देनेवालोंको मैं प्रारम्भसे ही घृणाकी दृष्टिसे देखती

आई हूँ। जो एक बार पत्नीको छोड़ देता है, उसका कोई विश्वास नहीं है। न जाने किस समय वह क्या कर देगा। मेरी नाइन्थकी 'क्लासफ़ेलो' ऊर्मिको तो आप जानते ही होंगे। कई बार आपके सामने मेरे साथ आई भी थी, कितनी अच्छी लड़की थी। बेचारीके मस्तिष्कमें न जाने क्या हो गया है ? उसकी बड़ी बहिनसे मालूम हुआ है जबसे उसका विवाह हुआ है तभीसे वह कुछ उन्मन-सी रहती है। फिर उसकी बड़ी बहिनसे और भी बातें मालूम हुई, जिनका सारांश यह है कि उसके पति डाक्टर हैं। न जाने कैसे तिकड़मी आदमी हैं। काफ़ी रुपया लेकर विवाह करते हैं। छः महीने बीतते न बीतते उस बेचारी लड़कीको न मालूम क्या बीमारी हो जाती है कि वह विक्षिप्त-सी होने लगती है। फिर स्वयं उसकी चिकित्सा करते हैं, और तब वह बेचारी एक वर्षसे अधिक जीवित नहीं रहती। शायद ऊर्मि तीसरी है।

रही धनकी बात। जो कुछ भी आपने पत्रमें लिखा है उस सबको देखते हुए, कमसे कम मैं अभीतक यह नहीं सोच सकती थी कि बाबूजी भी आँखोंसे देखते हुए मुझे गड्ढेमें ढकेल सकते हैं। माताजीको ज़रूर कुछ धनका लालच हो सकता है। परन्तु कमसे कम बाबूजीसे तो मैं ऐसी आशा नहीं करती। मैं मानती हूँ कि आजकी हर लड़की एक ऐसा स्वप्न पाले हुए है जिसमें अच्छा सजा-सजाया बँगला है, कार है, मनोविनोदको रेडियो, बैडमिंटन, और सोसाइटी है। एक फ़िल्मी एक्टर-सा प्यार करने-वाला पति है। कुछ अंशोंमें मैं भी अपनेको इन स्वप्नोंसे अलग नहीं पाती, पर एक बात मैं आपसे पूछती हूँ—

मान लीजिये एक गाड़ीमें आपको दो पहिये लगाने हैं, तो क्या आप इसे उचित समझते हैं कि एक तो अपनी आधी उम्र भुगत चुका हो और दूसरा नया तथा कुछ छोटा हो ? स्वास्थ्यपर तो मैं अधिक ज़ोर नहीं दे सकती, परन्तु कमसे कम मनुष्यका चरित्र, स्वभाव, विचारधारा तथा शिक्षाका होना अति आवश्यक है। हालाँ कि आजके समयमें बिना धनके

कुछ भी नहीं हो सकता, इतना मैं भी जानती हूँ, पर उसका असली धन विद्या ही होना चाहिए। आप जानते हैं, दुश्चरित्र आदमीका मुँह देखना भी मैं पाप समझती हूँ।

बीचमें कुछ ऐसा लगा था कि यह आफ़त मेरे सिरसे टल रही है, पर माताजी बहुत अधिक ज़ोर दे रही है। शायद बाबूजी भी अब तैयार हो गये है। उनके ऊपर अविश्वास करनेको जी नहीं चाहता कि वे मेरे जीवनको यों समझते-बूझते हुए भी नष्ट कर सकेंगे। और न विश्वास करनेको जी ही चाहता है। इसपर जो देखा सुना है उसीसे मैं असमंजस-में हूँ। फ़ोटो देखकर तो मुझे बड़ी घृणा हो गई है। सम्भव है, मेरी धारणाएँ ग़लत हों, पर अपनेको झुठलाया नहीं जाता।

अबसे पहिले मुझे 'शो'-दार फ़ोटो अच्छे लगते थे। परन्तु अब तो इस फ़ोटोके 'शो'-'स्टाइल'से मुझे घृणा हो गई है। आज मेरे हृदयमें जो स्थान किसी सादा (Simple) मनुष्यका हो सकता है, वह इस भद्दे दिखावेका नहीं। मैं स्वयं भी इतनी अधिक सादा नहीं रहती, परन्तु अब मेरा मन शायद सादा हो गया है। शायद अब मैं पहिलेसे अधिक सादा रहती हूँ; क्योंकि चाहे जो भी कपड़े आदि पहिनूं, कभी भी अब इस विचारसे नहीं पहिनती, जिससे पहिले पहिना करती थी। न जाने क्यों प्रकृति अब दिनोंदिन सादा रहनेकी ओर झुकती ही चली जा रही है।

अब आप इस विषयमें मेरे विचार भली प्रकार समझ गये होंगे। किन्तु यदि फिर भी कुछ हुआ तो वह मेरे भाग्यका दोष है। शायद विधाताने यही सब लिखा हो। जीवन यही है। इसके साथ भलीभाँति लड़ना चाहिए। परन्तु साथमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जीवनकी इस लड़ाईमें एक सम्पूर्ण व्यक्तिकी आवश्यकता है। इसे तो केवल घुल-घुलकर मरना ही कहा जा सकता है। मैं इस विषयमें सोचनेकी अधिक योग्यता नहीं रखती। इसलिए मूक रहकर केवल अपने भाग्यका खेल देख रही हूँ। जैसा भी बदा होगा वही होगा।

अब और अधिक क्या लिखूँ। इन दिनों इसी झमेलेमें मेरे पढ़नेका बहुत समय नष्ट हो जाता है जिसे मैं बिलकुल भी नहीं चाहती। एक बात मैं बिलकुल स्पष्ट लिख देना चाहती हूँ कि अगर उम्र और चरित्र ठीक हो और विद्या हो तो मै सब कुछ सहनेको तैयार हूँ, परन्तु इसे नहीं सहन कर सकती। पत्र किसीको दिखाइयेगा नहीं।

आपकी—हेम

पत्र नं० ८—

प्रिय हेम,

पत्र तुम्हारा मिल गया था। काफ़ी सोचनेका मसाला उसमें है। तुम इस बार मुझसे खुली हो यह देखकर प्रसन्नता होती है। माताजीकी कलकी बातोंसे ज्ञात हुआ है कि शायद बाबूजी इस विषयमें अपनी स्वीकृति भेज चुके हैं। स्वयं माताजीका कहना है कि शहरका 'इतना अच्छा धनी लड़का मिलना कठिन ही नहीं असंभव है।' तुम्हारे विचार इस विषयमें मुझे मालूम हो चुके हैं। आगे क्या होगा हेम ?

कभी-कभी में सोचने लगता हूँ कि इन पुराने आदमियोंकी दृष्टिमें क्या धन और ख़ानदान ही सबसे बड़ी वस्तु है। लड़के-लड़कीका स्वयंका अपना कोई अस्तित्व नहीं है ? हेम, न जाने कैसे एक प्रबल दुर्निवार विद्रोहकी भावना मेरे भीतर रह-रहकर मरोड़े मार रही है। हमसे तनिक भी बिना पूछे, क्या अधिकार है इन्हें, इस प्रकार हमारा जीवन नष्ट करनेका ? क्या जीवन ऐसी सस्ती वस्तु है कि वह यों जानबूझकर अनुमान और अटकलपर ही छोड़ दिया जाय ? हेम, मेरी हार्दिक इच्छा थी कि तुम जैसी रत्नको खूब देख समझकर, योग्य व्यक्तिको सौंपा जाय—जहाँ तुम्हारा आदर हो सके। पर बात ऐसी नहीं दिखाई देती। न जाने कैसा अन्धकारमय मुझे तुम्हारा भविष्य दिखाई दे रहा है।

तुम जीवनको युद्धस्थल मानती हो, पर स्वयं चुप रहना चाहती हो। अपनेको पूर्णतया भाग्यपर छोड़कर—यह कैसी कायरता ? यह निराशा-

पूर्ण बातें तुम मुझसे मत किया करो। मैं तो इस सिद्धान्तको मानता हूँ कि जीवनके प्रत्येक क्षणमें हमें प्रयत्न करना है। यों बेज़ुबानोंकी भाँति स्वास्थ्यका गलना मैं नहीं देख सकता। चुपचाप घुलना मूर्खता है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि तुम्हारी इस चिन्तामें हाथ बटा सकूँ। यह सब मुझसे देखा नहीं जाता हेम ! यह बलिदान ! तुम बताओ मैं क्या करूँ ?

सच हेम, मुझे बड़ा दुख होता है जब तुम जैसी लड़की कहती है कि 'भाग्यमें जैसा भी बदा होगा, वही होगा'। मूक रहकर भाग्यका खेल देख रही हो, तो फिर साधारण लड़की क्या सोच रही होगी। मैंने तुम्हें कभी भी साधारण लड़की नहीं समझा, इस भावनाको न जाने कितने समयसे मैं हृदयमें छिपाये हुए हूँ। जब तुम इस प्रकार निर्दय होकर मेरे उन विश्वासोंको झकझोर देती हो, तो मेरी आन्तरिक अवस्था क्या हो जाती है, इसे तुम क्या समझोगी ? हृदयकी भावनाओंका आदर करना तुमने नहीं सीखा। सच बात तो यह है कि मुझे तुम्हारा भविष्य ठीक दिखाई नहीं दे रहा। यह जानकर मुझे कुछ प्रसन्नता हुई कि तुम जीवनके युद्धस्थलमें वीरतापूर्वक कुछ करनेका विचार रखती हो। इस भाग्यके चक्करसे पीछा और छुड़ाओ। यह भाग्य वास्तवमें कुछ नहीं है, केवल कमज़ोर मनुष्योंका सहारा है। जिसपर वे अपनी दुर्बलताओंको लादकर अपनेको मुक्त समझ लेते हैं। इस समय मध्य-रात्रिके एकान्तमें जब मैं तुम्हें पत्र लिख रहा हूँ तो हृदय बड़ा कातर हो उठा है। आज मैं सोचता हूँ—एक कोमल कली जिसने अपने जीवनमें अभी कुछ नहीं देखा—रेगिस्तानकी तपती, झुलसती बालूमें पड़ने जा रही है। एक निष्कलंक छोटी-सी दीपशिखा भयंकर आँधियोंमें रख दी जानेको तैयार है। एक छोटी-सी नौका उफनते हुए सागरकी फुफकारती हुई लहरोंमें छोड़ दी जानेवाली है, न मालूम भीषण थपेड़ोंमें कहाँ जायगी ? किधर. . . .किस अवस्थामें ? आख़िर कलीकी नन्हीं पंखुड़ियाँ कबतक गरम बालूकी तपन सहेंगी ? कबतक दीपकी लौ आँधियोंसे लड़ेगी। कबतक लहरोंकी चोटोंमें नौका हँस सकेगी ?

हेम, मुझे अपनी सहायता करने दो—मुझसे देखा नहीं जाता। स्पष्ट मना कर दो तुम, नहीं तो मुझे लिखो, मैं आऊँगा अविलम्ब ! तुम मुझसे छिपाओ मत, झिझको मत, शायद मैं विपत्तिके समय स्थिर रहनेकी प्रेरणा ही सिद्ध हो सकूँ।

पत्रका उत्तर बहुत शीघ्र देना, मैं उत्कट प्रतीक्षामें हूँ।

तुम्हारा—शैलेन्द्र

पत्र नं० ६—

आदरणीय भैया,

शायद जो कुछ भी होना था, सो हो चुका। मुझसे पूछनेकी किसीने तनिक भी आवश्यकता नहीं समझी। मैं किसे दोष दूँ और वास्तवमें इसमें दोष किसीका भी नहीं है, वह तो सब मेरा भाग्य है। और इसलिए विवश होकर जो कुछ कष्ट मेरे ऊपर पड़ेगा मैं सहनेको तैयार हूँ। मैं ऐसा मित्र चाहती थी जो मेरा पथप्रदर्शन कर सकता, मुझे मेरे कर्तव्य समझा सकता तथा अपने पथपर अग्रसर होनेमें कुछ सहायता दे सकता। यह मुझसे नहीं सहा जायगा, कि कोई तो अपने आदर्श-पथपर बढ़ते-बढ़ते, कठिनाइयाँ सहते-सहते भले ही मर जाय और कोई मज़ेसे मौज उड़ाये। ख़ैर, प्रत्येक मनुष्य मरनेके लिए ही पैदा होता है चाहे वह आज हो या दो चार वर्ष पश्चात्। भैया ! तुम जानते हो—मेरा स्वास्थ्य मेरा साथ नहीं देता फिर जीवनके विषम संघर्ष ! मुझे लगता है दो चार वर्षसे अधिक मुझसे जीवित नहीं रहा जायगा।

साधारणतः मनुष्यका स्वास्थ्य, चरित्र, स्वभाव, इत्यादि तो अच्छा ही होना चाहिए। फिर उसमें दया, प्रेम, उदारता इत्यादि गुणोंका होना भी अत्यन्त आवश्यक है। विद्याका भण्डार धनके भण्डारसे अधिक हो। यही तो मनुष्यका चरित्र बनाती है। मद्य, मांसने किसे नहीं ले डाला। मनुष्यमें साहस, बल तथा देश-जातिके लिए मरनेकी क्षमता होनी चाहिए। पर मुझे विश्वास है 'इन्टर फ़ेल' उस मनुष्यमें

ऐसी कोई बात नहीं है। भैया, तुम मेरे साथ कहाँतक रहोगे, जो कुछ हो, मुझे स्वयं सहने दो। संघर्षोंकी चक्कीमें पिसकर मर गई तो दुख मत करना। लाख आदर्श-सिद्धान्तवादी होकर भी हम सब भाग्यके आगे विवश हैं। और तुम करोगे भी क्या भैया ? अब हो क्या सकता है ? तुम यहाँ मत आना, माताजीके स्वभावकी कटुता तथा बाबूजीकी ज़िदके आगे तुम एक पलभर भी न टिक सकोगे। यह सब तो मुझे ही सहने दो। यदि तुमने अब कुछ किया भी, तो उनकी ख़ानदानी इज़्ज़तका प्रश्न आ जायगा। शायद वे तुम्हारी बात सुनें भी नहीं। बहुत पहिलेकी एक घटना मुझे याद है। उन दिनों बाबूजी बरेलीमें थे। सन्ध्याके समय बरामदेमें बैठे थे। घुमड़-घुमड़कर बादल आते और बारिश होती थी। चारों तरफ़ हरियाली ही हरियाली दिखाई देती थी। तभी एक घसियारा सामनेसे निकला। बाबूजीने सोचा घोड़ीके लिए घास ही ले लें, रोका, पूछा। घासका छोटा-सा गट्ठर था। बोला दस आने। उन्होंने बरामदेमें बुला लिया। एक हाथमें बेंत था। घसियारेने गट्ठर ज़मीनपर पटक दिया था और हँसिया हाथमें लेकर अपनी रस्सी खोलने लगा। बाबूजीने आव देखा न ताव, दो तीन बेंत उसकी पीठपर मारे—'साले, ठगनेको यही जगह मिली थी।' घासवाला चौंककर सीधा खड़ा हो गया—'बाबूजी, पहिले मना कर देते।' इतना बाबूजी कहाँ सहन कर सकते थे ? एक बेंत और मारा, उसने अपने हँसियेसे रोकना चाहा, झपटकर उसका हँसिया धारके ऊपर ज़ोरसे पकड़ लिया। फिर उस बेचारेमें इतनी मार लगाई—इतनी मार लगाई कि याद करते कलेजा काँपता है। वह बचानेके लिए अपने हँसियावाले हाथको इधर-उधर करता रहा पर बाबूजीने हँसियाको इतना कसके पकड़ लिया था कि ख़ूनकी धार-सी चलने लगी थी और बादमें नस कट जानेके कारण पूरे छः महीने हाथ काठकी तख़्तियोंमें जकड़ा रहा। पर उस समय उन्होंने उसे बेहोश कर दिया। मैं उस समय बच्चा थी। पर आज जब इसे सोचती हूँ तो एक उत्कट घृणाकी अनुभूतिसे

हृदय उबलकर धसक जाता है। मनुष्य इतना क्रूर भी हो सकता है। और भी उदाहरण हैं। बाबूजीके सामने सिर उठानेकी मेरी हिम्मत नहीं होती। ऐसे क्रूर मनुष्यसे भैया तुम क्यों आकर उलझते हो। मै मानती हूँ, वे आपके मौसाजी है। पर उनकी हठके आगे तुम कुछ न कर सकोगे। मुझपर जो भी बीते, बीतने दो। तुम क्यों व्यर्थमें अपना समय नष्ट करते हो। दुख ही तो हम स्त्रियोंका जीवन है। गुप्तजीकी पंक्तियाँ याद हैं? ....

....माताजीके साथ रोटी बनवाकर आई हूँ। पत्र लिखते समय बीच ही में उन्होंने मुझे उठा लिया था। बड़ा हंगामा इसपर मचाया। कैसे पास होऊँगी भैया, इन्टरकी परीक्षाएँ हैं। घरके वातावरणमें तनिक भी शान्ति नहीं मिलती। अब यह सब सहा नहीं जाता। समझमें नहीं आता, क्या करूँ? आगे और पीछे सारा जीवन मुझे सपना दिखाई देने लगा है। केवल आपका पत्र ही है जिसे पढ़कर शान्ति होती है, फिर भी उसे देखकर फूट-फूटकर रोनेको दिल चाहता है। ऐसा मन होता है, तुम्हारी गोदमें सिसक-सिसककर रो लूँ—जी भरकर, जैसे बच्चा अपनी माँकी गोदमें रोता है। तब शायद कुछ शान्ति मिल सके। परन्तु शायद इस जन्ममें शान्ति नहीं मिल सकेगी। न मालूम क्यों भैया, अब तो जीवनसे मेरा बिलकुल दिल भर गया है। जीवनका तनिक भी मोह नहीं रह गया। जी चाहता है जिस किसीसे जितने भी बुरे व्यवहार मेरे प्रति किये जा सकें कर ले। और बस मैं रो-रोकर प्राण दे दूँ। आप शायद मेरी इन बातोंपर हँसें, किन्तु मुझे इसकी चिन्ता नहीं। मेरी परिस्थितियाँ देखिये और विचार कीजिये।

अब क्या लिखूँ। तुम मत आना भैया।

तुम्हारी—हेम

पत्र नं० १०—

प्रिय हेम,

अपने सामने सब कुछ जलता हुआ मैं नहीं देख सकता हेम, इतना

साहस मुझमें अब नहीं रह गया है। आखिर तीन वर्ष पास रहकर मौसा-जीके क्रूर स्वभावको कुछ तो समझ ही गया हूँ। मै मानता हूँ, चाहे संसार इधरसे उधर हो जाय, तुम्हारे बाबूजीके मुँहसे निकला हुआ वाक्य नहीं बदलेगा। पर फिर भी हेम, मैं अब रह नहीं सकता। मैं आ रहा हूँ, आज ही! तुम प्रत्येक अप्रत्याशित बातके लिए तैयार रहना। आख़िर पढ़ने-लिखनेका अर्थ ही क्या होता है? जब हम अपने विषयमें सोचने-विचारनेमें स्वतन्त्र नहीं हैं तो स्वतन्त्र है किस बातमें? अब हम लोग समझदार हो गये हैं। आख़िर भविष्य हमारा है। क्यों नहीं हमें समय दिया जाता कि हम उसे समझें, उसका सदुपयोग करें? हेम, अपनी चीज़पर हमारा अधिकार है। उसे नष्ट करना—चाहे नष्टकर्त्ता कोई हो—हम नहीं सहन कर सकते। यदि जन्मभर हमें रोना पड़ा, या आत्म-हत्या जैसे भयानक स्थानपर इस नाटकका अवसान हुआ, तो हमें यह लोग सँभालेंगे? उस समय तो ये लोग कहेंगे—'ससुरालसे सम्बन्ध टूटनेका अर्थ है माँके घरसे सम्बन्ध टूटना' जैसे जैनेन्द्रके 'त्यागपत्र'में बुआके साथ होता है। नहीं हेम, यह नहीं होगा, बात या तो इधर होगी या उधर। या तो फिर तुम्हारे भयानक नाटकके प्रारंभके साथ मेरी और मौसाजीकी जन्मभरको खटकेगी, या फिर किसीकी इच्छाके विरुद्ध कुछ नहीं होगा। अपने कर्तव्यसे पीछे हटना मैंने नहीं सीखा।

अच्छा, शेष मिलनेपर....।

तुम्हारा—शैलेन्द्र

× × ×

प्रिय नलिन,

....

मुझे देखते ही हेम चौंकी। जब मैं उसके माताजी-बाबूजीसे मिल चुका तो अपने पढ़नेके कमरेमें उसने कहा—'यह क्या किया तुमने भैया? मैंने तुम्हें रोका था।' वह उदास थी। मैं उसकी ओर थोड़ी देर देखता

रहा, फिर गहरी साँस लेकर बोला—'कैसी बात करती हो हेम, मैं चुपचाप देखता रहूँ?' फिर मैंने धीरे-से उसके कन्धेपर हाथ रख दिया—'जिस प्रतिमाको मनमें एकान्तनिष्ठासे लगातार मैं सँवारता आया हूँ, क्या उसे यों अयोग्य हाथोंमें जाता देख लूँ?'

'तुम मुझे मेरे ऊपर रहने दो भैया, मैं....' इसके पश्चात् जैसे उसके कण्ठमें कुछ फँस गया। फिर भर्राये-से गलेसे बोली 'भाग्यको कोई क्या कर सकता है, भैया?'

'क्या कर सकता है? देखना!' मैंने उसे सान्त्वना दी। बड़े प्यारसे उसकी पीठ थपथपाई। फिर सीधे उसकी ओर देखते रहकर कहा—'हेम, आख़िरी बार बता दो, तुमने उसकी फोटो देखी है। उसके विषयमें सब जानती हो, क्या तुम्हें वह पसन्द है, क्या तुम सुखी रह सकती हो?'

हेम धीरे-धीरे गम्भीर हो गई। आँखें उसकी मेरी ओर थीं पर दूर न जाने कहाँ देखते हुए सोचती रही। धीरे-धीरे उसकी अपलक आँखोंमें पानी भरता आ रहा था, फिर एकदम मुझसे लिपट गई—'भैया मैं मर जाऊँगी।'

और दूसरे दिन जब मैं मौसाजीसे बात कर रहा था तो सोचता रहा कि कैसे बात प्रारंभ की जाय। अन्तमें बड़े साहससे कहा—'माताजी कह रही थीं कि हेमका विवाह निश्चित हो गया है।' मेरी छाती धक-धक कर रही थी।

'हाँ, हेमका विवाह निश्चित हो गया-सा ही समझो। भाई साहब (मेरे बाबूजी)ने स्वीकृति दे ही दी है। लड़का बहुत धनी है, अच्छा है।' वे साधारण भावसे कहते गये।

'दूसरी है' भिंचे कण्ठसे पूछा।

'हाँ' वे कहते गये 'बम्बईमें कुछ करता है, हज़ारों रुपये महीनेकी आय है, कार, बँगला सभी हैं।'

'हेम राज़ी है ?' कण्ठसे जैसे स्वर नहीं निकल रहा था। आसन्न संकटके लिए मैं जैसे समेट-समेटकर साहस संचित कर रहा था।

'हेम ?' आश्चर्यसे उन्होंने चश्मेके पीछेसे कई बार पलकें झँपाईं। 'हेमको क्या है, सब ठीक-ठाक है, लड़का अच्छा है, धनी है।'

मैं चुप हो गया। फिर धीरे-धीरे बोला 'हेम राज़ी नहीं है।'

'हेम ? कौन कहता है, हेम राजी नहीं है ?' वे कुछ तने।

'मैं। उसने मुझसे कहा। विवाह उसका होते हुए भी आपने उससे तनिक भी नहीं पूछा है।' मैं वातावरणको अधिकसे अधिक पहिचाननेका प्रयत्न करता रहा। विरोधके लिए मैं भी कुछ तैयार हुआ।

'हेमने तुमसे कहा ? मुझसे क्यों नहीं कहा ?' शायद उन्होंने निचले ओटको दाँतसे काटा। थोड़ी देर चुप रहे सोचतेसे, फिर बोले--'हेमको मुझसे ख़ुद कहना चाहिए था। इतने दिनसे उसने चूँ भी नहीं की। बुलाओ उसे। मैं तो आज अन्तिम पत्र डाल रहा था।' उनका स्वर अस्वाभाविक रूपसे शान्त था। मैं समझ रहा था यह शान्ति वैसी ही है जैसी विस्फोटोन्मुख ज्वालामुखीके मुखपर होती है। पर यह विस्फोट कैसा होगा, इसे सोचनेमें मैं असमर्थ था। न जाने कैसे भयकी भाफसे मेरी छाती भर उठी थी।

'आपके सामने शायद वह न कह सके।'

'बुलाओ तो सही, हर्ज क्या है।' कोमल स्वरसे वे बोले।

स्वरकी इस कोमलतासे वास्तवमें मैं डर गया। इतनी देरसे इकट्ठा किया साहस मुझे छूटता-सा लगा।

भीतर गया। हेम बग़लके कमरेमें ही सब सुन रही थी। जाकर बोला--'हेम, मौसाजी बुला रहे हैं। देखो साफ़-साफ़ मना कर देना। झिझकने और डरनेकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है। यहीं तुम्हारा भाग्य झूलता है। ज़रा भी मत डरना, अच्छा।'

हेमका झुका हुआ सिर हिला।

दोनों कमरेमें आये। झिझकती-सी हेमने बाबूजीकी ओर सिर झुकाया। जैसे पूछा——क्या है ?

'हेम, यह शैलेन्द्र क्या कहता है ?' बाबूजीने पूछा। स्वर वैसा ही शान्त था——'तुमने मुझसे क्यों नहीं कहा ?'

हेम चुप खड़ी थी सिर झुकाये।

वातावरण जैसे पल-पलपर झन्न-झन्न करता बोझिल हो चला। 'तुम्हें यह सब पसन्द है या नहीं, साफ़-साफ़ कह दो।' बड़े प्यारसे उन्होंने पूछा।

मैं इस प्यारसे काँप उठा। मुझे लगा वह भयंकर विस्फोट अब हुआ, अब हुआ। कहीं क्रोधमें मार न बैठें, मैंने इधर-उधर देखा, कोई लकड़ी-डण्डा है या नहीं। मौसाजीके हाथके पास ही 'रूल' रखा हुआ था। वे धीरे-धीरे अँगुलीसे उसे हिला रहे थे। मैंने निश्चय कर लिया कि चाहे मुझे रूल पकड़कर इतने दिनोंके आदर-सम्मानको ठोकर मारकर अकड़ जाना पड़े पर हेमको तनिक भी कुछ नहीं होने दूँगा।

'क्यों, बोलो, राजी हो तुम ?' फिर पूछा, स्वर ज़रा तेज था।

बड़े आत्मविश्वासके साथ हेमने सिर हिलाया——'हाँ'।

और मुझे लगा, झन्नाटेसे नाचता हुआ कमरा ऊपर आकाशमें उठने लगा——उठने लगा। फिर एकदम औंधा होकर तेज़ीसे घूमता हुआ नीचे धँसने लगा——नीचे——नीचे अन्धकारमें।

अन्धकारमें डूबते हुए मुझे लगा, जैसे एकदम हेम फूट-फूटकर रो पड़ी।

———

रहस्यमयी

"थक तो नहीं गई आरती?" दिसम्बर-जनवरीके महीनेमें भी आरतीके माथेपर पसीनेके छोटे-छोटे बिन्दु झलक आये थे। वह हाँफ रही थी। उसे ही लक्ष्य करके निखिलने पूछा। उसकी साँस स्वयं तेज़ीसें और फूली हुई-सी चल रही थी।

'अरे, नहीं---बस इतनेसे ही थक जाऊँगी?' आरतीने मुस्कुरानेका प्रयत्न किया; पर उसके हाँफनेने उसे मुस्कुराने नहीं दिया---उसकी वह मुस्कुराहट केवल एक खिसियान-सी बनकर लुप्त हो गई। अपने इस भावको छिपानेके लिए उसने अपने शरीरपर लिपटे कम्बलको खोलकर ज़ोरसे कन्धेपर डाल लिया।

'सम्भवत: अब हम खतरेसे बाहर हैं---अब ऐसी दौड़नेकी आवश्यकता नहीं है, धीरे-धीरे चलो।' निखिलने एक सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि आरतीके श्रमित शरीरपर डाली। वह स्वयं धीरे चलने लगा था। आरतीने भी अपनी चाल मन्द कर दी। निखिल बार-बार उसे देखता---जैसे आरतीके श्रमसे वह क्लान्त हो रहा था।

'ओफ़! भगवन्---कितना ज़बर्दस्त था आजका घेरा!' निखिल जैसे किसी कल्पनासे सिहरकर बोला---'क्यों आरती, तुम्हें उस समय कैसा लग रहा था? मैं तो भाई, अब भी काँप उठता हूँ---चारों ओर पुलिसके जवान---दनदनाती राइफ़लें!'

'मुझे?' आरतीने चंचल होकर कहा---'मुझे तब ज़रा-सा भी डर नहीं लगा निखिल; अब उस विषयमें सोचती हूँ तो काँप उठती हूँ। मुझे स्वयं आश्चर्य है कि उस खंडहरकी छोटी-सी दीवारके पीछेंसे कैसे मैं पुलिसकी राइफ़लोंका जवाब देती चली गई।'

'क्या जीवन है हमारा भी!' और निखिलने एक दीर्घ निश्वास छोड़ा—भावुक नेत्रोंसे चाँदनीमें वह अपना मार्ग देखने लगा। पहले भागनेका श्रम था, अब धीरे चलनेके कारण उसके शरीरमें शीतका कम्पन बढ़ता जाता था।

'इतना कहे देती हूँ निखिल, दलपति चाहे आज्ञा दें या न दें, यह पुलिस ऑफ़िसर मुझसे बच नहीं सकता!' कहकर आरतीने धीरेसे अपने निम्न अधरको दबाया। फिर वह निखिलके साथ क़दम मिलानेका प्रयत्न करने लगी।

'मैं कई दिनोंसे देख रहा था—तीन आदमी सदा मेरे साथ रहते थे, कभी बदलकर कोई आ जाता कभी कोई', निखिलने अपने दोनों हाथोंको मुट्ठी बाँधकर छातीपर कस लिया। बोला—'तो भी आज हमारा पुनर्जन्म हुआ है—मेरी समझमें नहीं आता कि बदमाशोंको हमारा इस खंडहरमें होनेका पता कैसे लगा।'

'कैसे भी लगा हो, मुझे तो प्रसन्नता इस बातकी है निखिल, दलपतिने जो काम दिया था उसमें हम सफल हो सके और यह पुनर्जन्म और जन्म तो हमारे साथ ही है। जबतक कहीं भी क्रान्तिकारी हैं—और राजभक्त पुलिस है, यह प्राणोंपर खेल जानेके अभिनय होते ही रहेंगे—और मेरा तो विश्वास है निखिल, कि ऐसी घटनाएँ होती रहनी चाहिएँ, यह स्फूर्ति प्रदान करती हैं!' आरतीने गम्भीरतासे कहा।

निखिलने एक बार फिर आरतीके मुखकी ओर देखा, इस बीस वर्षीया युवतीमें इतना साहस कहाँसे आ भरा है—उसे विश्वास नहीं हुआ कि यह आरती ही बोल रही है। थोड़ी देर वह आश्चर्य-चकित हो आरतीकी ओर देखता रहा फिर एकदम चौंककर बोला—'तुम इसे सफलता कहती हो आरती?' फिर आवेशमें शीघ्रतासे अगले शब्द खोजने लगा; किन्तु एकदम बोला—'यह महान् सफलता है! तुम विश्वास रक्खो, हमारे दलमें ऐसे काँइयाँ अंगरेज़को मारनेका साहस करनेवाला कोई नहीं है—

मैं भी नहीं। क्यों आरती, जब उसने तुम्हारे ऊपर फ़ायर किया था तब तुम्हें भय नहीं लग रहा था ?'

'मैंने कहा न, निखिल, काम करते समय मुझे भय नहीं लगता' आत्म-प्रशंसाकी एक मधुर-मुस्कुराहट उसके अधर-पल्लवोंसे थिरकती हुई कपोलोंपर पहुँचकर लुप्त हो गई। उसने कहा--'मैं जानती थी कि एक-एक पलमें मुझमें कितना आत्म-विश्वास संचित हो रहा है, आकस्मिक आक्रमणसे त्रस्त उतना ही आत्म-विश्वास वह खोता जा रहा है--फिर बोलो उसके मरनेमें कसर ही क्या थी ?'

'कैसे-कैसे दृश्य देखने पड़ते हैं इसमें आरती !--हम शायद स्वप्नमें भी उन बातोंको देखकर चीख़ उठते !' निखिल आरतीके बहुत समीप आकर चलने लगा।

रात्रिका पहला प्रहर समाप्तिपर था ! चन्द्रिका स्वच्छतर होती जा रही थी--चन्द्रमा आकाशके मध्यमें आ गया था। चारों ओर सुनसान--केवल यही दोनों चल रहे थे।

'आरती !' निखिलने भावना-विह्वल नेत्रोंसे निर्निमेष आरतीके मुखकी ओर देखते हुए कहा--उसकी इच्छा हुई आरतीका हाथ पकड़ ले !

आरती चुप रही। निखिलका स्वर सुनकर उसने एक बार नीले आकाशमें जगमगाते सुधाकरको देखा--फिर चतुर्दिक् बिखरी हुई उस मधुर चाँदनीको ! प्रकृतिका यह वेश उसे अच्छा लगा।

'आरती' निखिलने फिर पुकारा--पहिलेसे ज़ोरसे--गद्गद स्वरमें।

'कुछ बात भी !' आरतीका स्वर तीव्र था।

निखिल चुप हो गया। एक अद्भुत विह्वलता उसके मुखपर नाच उठी। अपनेको संयत करता हुआ वह चलने लगा।

थोड़ी देर आरती चुप रही, फिर उसने निखिलके मुखकी ओर देखकर कुछ समझनेका प्रयत्न किया। फिर नम्र स्वरमें उसे समझाती हुई-सी बोली--'देखो निखिल, बुरा माननेकी बात नहीं है। तुम खुद समझते

हो, यही एक पहलू है जिसको लेकर हमारे--मेरा मतलब क्रान्तिकारियोंसे है--दलपर सबसे अधिक प्रहार किया जाता है। फिर दलपतिने हमें जिस कामसे भेजा है वह हमारे लिए मुख्य है....और ये बातें तो गौण हैं,....क्या रक्खा है, इन प्रेम, प्रणय, अभिसारमें! तुम्हें आश्चर्य होगा, कि सह-शिक्षाके वातावरणमें एम० ए० करनेके पश्चात् भी मैं प्रेम करनेके पक्षमें नहीं हूँ। रूढ़ियाँ--जो हमारा मार्ग रोके हैं, अवश्य इस योग्य हैं कि हम विद्रोही बनकर उनकी उपेक्षा करें--उन्हें तोड़ दें, पर स्वच्छन्दताका पर्याय रंगरेली तो नहीं है! मुझे हँसी आती थी, जब मैं देखती थी, हमारे 'होस्टल'की कोई लड़की किसी लड़केकी तस्वीरको छिपाकर किताबमें रक्खे हुए है--एकान्तमें उसे घंटों देखती है; कोई लड़की छातीपर कहानियोंकी कोई पत्रिका रक्खे हुए सिसक रही है--इसलिए कि उसकी कहानीने बेचारीकी सुषुप्त भावुकताको उभाड़ दिया है, कोई घंटों एक ओर ही अपलक देखती रहती है--बड़ी दीर्घ उच्छ्वास और निःश्वास छोड़ती है, जीवनसे निराश कोई रेलकी पटरीपर सो जानेकी मधुर कामनाको पाले हुए है--कितनी निर्लज्ज और बुद्धिहीन बातें हैं ये!' और धीरेसे, जैसे निखिलकी मनुहार करती हुई आरती हँस दी।

'तो तुम प्रेममें बिलकुल भी विश्वास नहीं करतीं?' धीरेसे निखिलने सिर उठाया--आरतीके बात करनेके ढंगसे वह अपनी चोट भूल रहा था।

'रत्तीभर नहीं' उत्साहित होकर आरतीने कहा--'मनके और विकारोंकी भाँति प्रेम भी अचिर है--विशेषकर विवाहसे होनेवाला प्रेम! विवाहके पहले होनेवाले प्रेमका चरम विवाह है, पर यथार्थ प्रेम जिसे तुम स्वर्गीय, अमर, कहते हो--विवाहके पश्चात्से प्रारम्भ होता है। क्योंकि वह स्वाभाविक है साहचर्यसे उत्पन्न होता है।'

'अच्छा?' गहरी साँस लेकर निखिलने कहा। वह एकदम चौंका। एक सफ़ेद-सा ख़रगोश उनके सामनेसे दौड़ता हुआ चला गया।

'कहाँ चल रही हो आरती!' निखिलने एकदम पूछा और रुक गया।

'क्या मालूम ?' आरती भी रुक गई––'जहाँ तुम चलो !'

'थक गई हो ?'

'हाँ, थोड़ी-थोड़ी थकान तो लग रही है।'

'फिर....' निखिल कुछ सोचनेका प्रयत्न करने लगा––'शहरमें लौटना तो फिर अजगरके मुँहमें जाना....।'

'और आ कितनी दूर गये होंगे ?'

'कोई आठ-दस मील !' निखिलने सामने देखनेका प्रयत्न किया–– 'पहले तो इतनी रातको कहीं कोई पास दिखाई ही नहीं देता, फिर रातमें कहीं जाना ठीक भी नहीं है। क्यों तुम्हारा क्या विचार है ?'

'हटाओ, यहीं रात बिताई जाए।' आरती मुस्कुरा उठी।

'ज़रा मार्ग छोड़कर दो-एक फ़र्लांग हट जाएँ––ठीक रहेगा न ? अपना 'रिवॉल्वर' देख लो––गोली भरी है न, न हो तो मुझसे ले लो, नौ राउंड हैं मेरे पास।'

'सब ठीक है––मेरी जेबमें भी काफ़ी हैं।' शीतसे निखिल ठिठुर रहा था।

दोनों उस पगडंडीको छोड़कर जंगलमें घुस गये। थोड़ी दूर एक बड़े पेड़के नीचे आरती धम्मसे बैठ गई––इसके पश्चात् उसके पास निखिल भी।

दोनों थोड़ी देर चुपचाप बैठे रहे। निखिल एक स्वेटर और क़मीज़में काँप रहा था।

'लो कम्बल ओढ़ो।' आरतीने उसे लक्ष करके अपना कम्बल खोला।

निखिल शीतसे काँप रहा था फिर भी बोला––'न् न् आरती––यह नहीं होगा, तुम ओढ़ो, मुझे जाड़ा नहीं लग रहा तनिक भी !'

'लग तो रहा है निखिल।' आरती कुछ रुकी––मुस्कुराई।

'नहीं––नहीं तुम विश्वास रक्खो' निखिलने कहा और वह दृढ़ हो गया।

आरतीने कम्बल फिर ओढ़ लिया।

'तुम्हारे नाम कई वॉरंट निकल चुके हैं, आरती' समय बितानेके लिए निखिलने वार्तालाप प्रारम्भ किया।

'उहुँ—यह तो निकलते ही रहते हैं।' लापरवाहीसे आरतीने कहा, फिर पूछा—'इन्हीं अंगरेज़ोंके मारनेके सिलसिलेमें निकले होंगे?'

'हाँ, पेड़के तनेसे लगते ही निखिलपर आलस्य चढ़ने लगा—और वह क्रमशः बढ़ता जाने लगा।

दोनों फिर चुप हो गये।

निखिल उनींदा-सा हो रहा था—पर शीतके कारण वह सो नहीं सक रहा था। हवाके एक झोंकेसे काँपकर वह सचेत हुआ।

'कम्बल ले लेनेमें कोई बुराई तो नहीं थी निखिल!' आरतीने अपनी गरदन घुमाकर किसी आशंकासे इधर-उधर देखा। घने पेड़के नीचे एक तो वैसे ही अन्धकार था, फिर आस-पासकी घनी झाड़ियोंने चाँदनीको यथाशक्य दूर रखनेकी चेष्टा की थी।

'नहीं आरती, हाँ एक बात बताओ।'

'पूछो—शर्त यह है, कि बुद्धिसे कही गई हो।' आरती दूर चाँदनीकी ओर निर्निमेष देखती हुई मुस्कुराई।

'हाँ, हाँ—उससे तुम निश्चिन्त रहो! मैं पूछता था, जिस देशके लिए हम रात-दिन खून-पसीना एक कर देते हैं, प्राणोंको हथेलीपर धरे फिरते हैं, उसी देशके वासियोंसे अपने प्रति नीच चोर डाकुओंका-सा व्यवहार देखकर तुम्हें कैसा लगता है?—मुझे तो भई इतना क्रोध आता है कि इन सबको गोली मार दूँ और खुद भी मर जाऊँ—चूल्हेमें गया देश।'

'और मुझे?—मुझे तो भाई, दुख होता है, रुलाई आती है। कभी-कभी इनकी मूर्खतापर हँसी भी आती है—कुछ हो निखिल, एक दिन आयेगा जब यह लोग हमें पहचानेंगे पूजेंगे—आदर करेंगे। और सच बात तो यह है कि मैं इस विषयपर कभी सोचती ही नहीं!'

दोनों फिर चुप हो गये। एक पक्षी पेड़की एक डालीसे उठा—दूसरीपर जा बैठा—उसके पंखोंकी 'फड़-फड़' बड़ी देरतक उस निस्तब्धतामें गूँजती रही।

'हमें तो भई, नींद आ रही है' आरती बोली। पर निखिलने नहीं सुना—शायद सो रहा था।

आरतीने धीरेसे अपना कम्बल खोलकर उसके ऊपर डाल दिया। किन्तु निखिलकी नींद खुल गई—'नहीं, नहीं, आरती यह नहीं होगा।' उसकी इच्छा हुई कम्बल उतारकर आरतीको उढ़ा दे, पर उसकी उष्णता उसे सुखद लग रही थी—वह एकदम नहीं उतार सका—उतारनेका उपक्रम करने लगा।

'लेटे रहो चुपचाप।' आरती अधिकारसे बोली।

'नहीं—मैं कभी नहीं ओढ़ूँगा ?'

'ओहो ! तुम तो भाई बहुत तंग करते हो—अच्छा तो यों सही !' आरतीने उठकर कम्बलका एक सिरा पकड़कर ऊँचा किया—और निखिलसे सटकर वह स्वयं वहीं बैठ गई—उसने भी पेड़के तनेका सहारा ले लिया। कम्बल उसने निखिलको भी उढ़ा दिया। दोनोंके कन्धे सटे थे, आरतीका सिर निखिलके सिरके सहारे. . . . !

किन्तु निखिल काँप रहा था—जितना कम्बल ओढ़नेसे पहले काँप रहा था उससे भी अधिक। उसके काँपनेमें शीत नहीं था, आरतीको अनुभव हुआ जैसे निखिलके शरीरसे पसीना निकल रहा हो !

'इस तरह तुम्हें शायद तकलीफ़ हो रही है ?' आरतीने सरलतासे हँसकर कहा—'सीधे लेट जाओ न !'

और थोड़ी देर पश्चात् दोनों—एक ही कम्बलमें भोले शिशुओंकी भाँति भली प्रकार लेट गये। निखिलको नींद नहीं आ रही थी, पर आरती खूब गहरी नींदमें सो रही थी—निश्छल, निर्विकार।

× × ×

निखिलकी समझमें नहीं आ रहा था कि उसकी आरतीके साथ एक ही कम्बलमें रात बिता देनेकी बात सुनकर दलपति इतने अधिक गम्भीर और चिन्तित क्यों हो उठे हैं।

'अच्छा, ख़ैर मैं तुम्हारी सफलतापर तुम्हें बधाई देता हूँ!' गम्भीर मुद्रासे अपने सिरपर हाथ फेरते हुए दलपतिने कहा। उनकी इस बधाईमें तनिक भी उत्साह नहीं था।

अपनी प्रशंसासे संकुचित निखिल थोड़ी देर सिर झुकाये मौन खड़ा रहा फिर धीरेसे उसने पूछा––'तो अब आज्ञा है?'

कुछ सोचते-से दलपतिने एकदम सिर उठाया––'हाँ––नहीं, मुझे तुमसे कुछ काम है निखिल।' और वे उठकर खड़े हो गये।

'आओ बाहर।' उन्होंने यह कहकर निखिलके कन्धेपर हाथ रख दिया। दोनों कमरेसे बाहर आये। किशोर सूर्य तारुण्यपर अधिकार कर रहा था––किरणें प्रखर हो गई थीं।

'कहो, 'रिस्क' लेनेमें कुछ आनन्द आता है?' उन्होंने विचित्र स्वरमें पूछा।

निखिल समझ गया, कि दलपति कोई मुख्य बात कहना चाहते हैं उसीके लिए यह भूमिका या वातावरण तैयार किया जा रहा है। किन्तु बात कैसी होगी––इस बातका अनुमान वह नहीं लगा सक रहा था। वह सोचने लगा––इस बातमें और साथ सोनेकी बातमें क्या सम्बन्ध है।

'हाँ बताया नहीं तुमने।' दलपतिने फिर पूछा, और एकदम अप्रत्याशित रूपसे बोले––'निखिल, इस समय मैं तुमसे दलपतिकी हैसियतसे कोई बात नहीं पूछ रहा हूँ। इस समय तो यों समझ लो––हम और तुम मित्र हैं––मैं जो कहूँगा तुम्हारी भलाईके लिए।'

'आनन्द-वानन्द क्या?' अब निखिल थोड़ा खुला। उसने लक्ष किया, दलपति कोई बात कहना चाहते हैं पर कह नहीं पा रहे हैं; पर वह कहता ही गया––'जो सामने आ जाता है, उसे तो भुगतना ही पड़ता है।'

'और आरतीने भी कुछ किया ?'

निखिलको लगा जैसे दलपति बहुत साहस करके आरतीका नाम ले पाये हैं। वह बोला--'जो कुछ किया वह उन्होंने ही किया। समझिये मैं तो यों ही था। बड़ा साहस है उनमें।'

'हाँ--सो तो मैं ख़ूब जानता हूँ उसे।' दलपतिने इस प्रकार कहा--जैसे उन्हें निखिलके मुखसे यही सुननेकी आशा थी।

दोनों चुप हो गये।

'पर एक बात है . . .।' कुछ देर पश्चात् दलपतिने कहा, फिर थोड़ी देर वे मौन रहे और धीरेसे बोले--'यह डिक्टेटरशिपकी बात नहीं है--इसका मैं प्रारम्भसे विरोधी हूँ। पर तुम लोगोंने मुझे यह बनाया है--स्थान दिया है तो उत्तरदायित्व तो नहीं भूला जा सकता। निखिल एक बात मैं कहूँगा तुम्हें बुरा नहीं मानना चाहिए।

दलपतिको फिर चुप देखकर निखिलने पूछा--'क्या ?'

'यही कि आरती स्त्री है--और युवती।'

अपने प्रवाहमें निखिलने कह दिया--'हाँ, हाँ।' पर जैसे ही बात उसकी समझमें आई, उसका मुख एकदम आरक्त हो उठा।

'और इससे तुम जानते हो क्या होगा ?' दलपतिने देख लिया कि बात निखिलकी समझमें आ गई है, वह धारा प्रवाह कहते गये, अब उनके स्वरमें पहिले जैसी हिचक नहीं थी--'तुम्हें ख़ुद मालूम है पंजाबके कुछ युवकोंने ऐसी ही एक भयंकर ग़लती कर दी थी, इसका उन्हें कम मूल्य भी नहीं चुकाना पड़ा। अब इससे दूसरे लोगोंपर जो प्रभाव होगा सो तो होगा ही; सबसे बड़ी बात यह है कि हम लोग लक्ष्य-भ्रष्ट हो जायेंगे . . . .।'

'क्यों ?--आरती स्त्री है इसलिए ?'

दलपति और निखिल दोनों चौंके। शान्त आरती खड़ी हुई दलपति-की मुख-मुद्राको पढ़नेका प्रयास कर रही थी।

दलपति संयत हो गये––'यदि तुमने अपने उद्देश्यको गौण बना दिया तो!' उनके स्वरमें दृढ़ताका आभास था। वे कहते गये––'आरती, जब हम लोग इसमें––दलमें––सम्मिलित हुए थे तो प्रतिज्ञा-पत्रपर रक्तसे हस्ताक्षर किये थे कि देशकी स्वतन्त्रता हमारा प्रमुख लक्ष्य होगा। इसके लिए हम दलके नियमोंके अतिरिक्त संसारका कोई बन्धन नहीं मानेंगे––और जबतक अपने इस लक्ष्यको नहीं प्राप्त कर लेंगे, तबतक चैनसे नहीं बैठेंगे!'

'हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि हमने ऐसी प्रतिज्ञा की थी।' शान्त स्वरमें आरतीने कहा।

'अपने मार्गपर चलनेवालोंकी पहिली ग़लतियोंको देखकर हमने चारित्रिक दृढ़ताको पहला स्थान दिया!' दलपतिने कहा, 'और.... और अब....।' वे हिचक रहे थे।

'क्या कहना चाहते हैं आप––स्पष्ट कहिये न?' आरती प्रयत्न कर रही थी कि उसका स्वर अब भी शान्त रहे।

'और स्पष्ट चाहती हो?' कहकर दलपतिने निखिलकी ओर देखा।

'तो....आपको मेरे चरित्रपर सन्देह है?' उसका स्वर कठोर था––शरीर तन गया।

'नहीं....नहीं' दलपति जैसे अपनी सफ़ाईके लिए शब्द खोजनेका प्रयत्न करने लगे।

आरतीने सिर झुका लिया। उसने भी एक बार निखिलकी ओर देखा, फिर थोड़ी देर चुप रही। बोली––'अभीतक इस दलका नियम मैंने कभी नहीं तोड़ा––आज तोड़ना पड़ रहा है। मेरा त्यागपत्र स्वीकार करनेकी कृपा करेंगे आप?––आप विश्वास रखिये––आरती विश्वास-घातिनी––क्षुद्र नहीं है।' वह इस प्रकार कह रही थी मानो पिछली सारी बातें एकदम भूल गई हो।

'तुम्हें कल उत्तर दिया जायेगा....पर....।'

'पर' कुछ नहीं!' चीख़कर आरती बोली--'आपको मालूम होना चाहिये दलपति, कि मैं संसारकी प्यारीसे प्यारी वस्तुको चरित्रके सामने ठोकर मार दूँगी। मैं कभी नहीं सह सकती कि कोई मेरी ओर उँगली उठाये! आप विश्वास रखिये मै आज ही चली जाऊँगी--आज ही!' आरतीका मुख लाल हो गया। वह पत्तेकी भाँति काँप उठी। बादमें उसकी समझमें स्वयं नहीं आया कि वह इतनी उत्तेजित कैसे हो उठी थी। वाक्यका अन्तिम भाग कहते-कहते उसकी आँखोंमें पानी भर आया; पर वह आर्द्र-कंठसे कहती ही गई--'मै प्राण और देश, इन सबसे चरित्रको अधिक प्यार करती हूँ।' और वह बिना निखिल और दलपतिकी ओर देखे द्रुत पगोंसे उस स्थानसे चल दी।

चलित-यन्त्रकी भाँति निखिल भी उसके पीछे चलने लगा।

'तुम वहीं रहो निखिल, मेरे पीछे आनेकी कोई आवश्यकता नहीं--तुम्हें!' क्रुद्ध कंठसे मुड़कर आरतीने कहा।

दलपतिके नेत्र सजल थे।

× × ×

स्थानीय समाचार पत्रका 'हॉकर' बीच सड़कमें सन्ध्याके संस्करणको चिल्लाता हुआ बेच रहा था--'षड्यन्त्रकारियोंके विशेषज्ञ अंगरेज़ एस० पी० गोलीसे उड़ा दिये गये!. हत्यारोंका पता लगानेमें पुलिस असफल!! बहुतसे अख़बारोंका बंडल बनाकर उसने बग़लमें दबा लिया था, कुछ अख़बार खुली हुई अवस्थामें दूसरे हाथमें लटका लिये थे। अभी वह अपने कार्यालयसे थोड़ी ही दूर आया था कि पीछेसे--तेज़ीसे अपनी ओर आते हुए मोटरके 'हॉर्न'ने उसे चौंका दिया। वह घबराकर मार्गसे बचनेके लिए एक क़दम भी नहीं हटा था कि भयंकर आँधीका प्रचंड झोंका सा उसके पाससे सन्नाटेसे निकल गया--जैसे धक्का देकर कोई दौड़ा हो। वह गिरते-गिरते बचा, उसने ग़ौरसे सामने देखा--एक मोटर साइकिल भीषण वेगसे दौड़ी चली जा रही थी। साड़ीके इधर-उधर उड़नेसे उसने

अनुमान लगा लिया कि उसपर कोई स्त्री सवार है। आधुनिक स्त्रियोंकी इस उच्छृंखलताको मन ही मन कोसता, वह अपनेको संयत करने लगा। तभी पीछेसे फिर मोटरका 'हॉर्न' ग़रज उठा। झल्लाता हुआ वह एकदम सड़कके किनारे जा खड़ा हुआ। एक वहुत बड़ी पुलिस-लॉरी उतने ही वेगसे सन्नाती हुई सामनेसे निकल गई। आश्चर्यसे मुँह खोले वह समझनेका प्रयत्न करने लगा।

आरतीको सामनेका मार्ग नहीं दिखाई दे रहा था—वह अन्धाधुन्ध दौड़ रही थी।

× × ×

आरतीकी साँस तेज़ चल रही थी। कुछ भी बात वह सोच ही नहीं सक रही थी—जैसे उसके मस्तिष्कमें निरन्तर आँधी चल रही हो। छातीके अन्दर जैसे दूसरी मोटर साइकिल दौड़ उटी हो। घबराई हुई वह तत्क्षण पासवाली गलीमें बिना इधर-उधर देखे दौड़ने लगी—पीछेसे भागकर जाती हुई पुलिस 'लॉरी'का भारी स्वर उसने सुना! पास ही एक द्वार था, बन्द। उसने दोनों हाथोंसे उसमें धक्का दिया—जैसे वह भरपूर शक्तिसे ही धक्का देनेके लिए दौड़ी चली आ रही हो! वह थोड़ी देर खड़ी हाँफती रही। कमरमें खुसे हुए साड़ीके पल्लेको निकालकर सारे मुँहका पसीना पोछा। भीतरसे किसीने द्वार खोलकर देखा—द्वारपर स्त्री खड़ी है—यह सोचकर द्वार खोलनेवालेने पूरा द्वार खोल दिया।

आरती स्तब्ध खड़ी रह गई—उसके सामने उसकी बाल-सखी लीला खड़ी थी।

'है!' आरतीके मुखसे निकला, उसने घबराकर इधर-उधरके मकानोंपर दृष्टि डाली। लीला बाल विधवा थी, घरवालोंकी सख़्तियोंसे घबराकर वह ग़ायब हो गई थी। आरतीको निश्चित रूपसे मालूम था, इधर-उधरके काफ़ी 'अनुभवों'के पश्चात् वह वेश्या हो गई है। आस-पासके

मकानोंको देखकर––जैसे उसके हृदयके कोमल भागपर किसीने तानकर घूँसा मारा हो।

'लीला मुझे....उफ़! आश्रय दो....बहिन!' फिर भी असंयत वाक्य उसके मुखसे निकल पड़े। वह बिना लीलाके उत्तरकी राह देखे अन्दर घुस गई। आश्चर्य-चकित लीला अपनी बड़ी-बड़ी आँखें फैलाये उसे देख रही थी। आरतीने ज़ोरसे द्वार बन्द कर दिये।

× × ×

उस दिन आरतीको रातमें बहुत देरतक नींद नहीं आ सकी।–– वह सोचती रही––लीला वेश्या है उसके यहाँ ठहरना क्या उसके लिए कलंककी बात नहीं है? मान लो, आज दलपति या निखिल उसके यहाँ आते हैं––तो उसे देखकर क्या सोचेंगे? और न भी आयें तो क्या उन्हींको दिखानेको वह अपने चरित्रको उज्ज्वल रखना चाहती थी? नहीं, चरित्र उसके भविष्यका निर्माता है––चरित्रके विषयमें उसे अधिकसे अधिक सचेत रहना होगा––जबकि पंजाबके उदाहरण उसके सामने हैं। क्या हुआ, दलपति और निखिलने उसे छोड़ दिया––इनके लिए वह अपना कर्तव्य थोड़े ही छोड़ देगी। उसे माताको इन फ़िरंगियोंके बन्धनसे मुक्त करना है। तभी उसे इसी बातमें फाँसी पाये हुए अपने भाईकी याद आ गई। उसके अन्दर जैसे कोई चीज़ तड़प उठी, जैसे किसीने उसके हृत्पिण्ड-पर उत्तप्त लोहा रख दिया हो, जैसे किसीने उसकी पसलियोंमें उबलता सीसा भर दिया हो––अपने कर्तव्यको वह नहीं भूल सकती, वह एक-एक अंग्रेज़को चुन-चुनकर मारेगी। अब, इस प्रकार छिपकर बैठनेसे काम नहीं चलेगा। तभी उसे अपने शरीरकी सारी नसोंमें एक साथ एक ऐसी मचलन अनुभव हुई––कि उसे कुछ करना चाहिए––जैसे कोई उसके अन्दर ललकारकर कह रहा हो––कुछ कर––उठ! ऐसी मचलन उसे अपने अन्दर केवल हत्याओंके कुछ पहले अनुभव होती थी, किन्तु आज अकारण ही ऐसा क्यों हो रहा है––वह समझ नहीं पा रही थी।

उसकी इच्छा हुई, कि इसी समय इस घृणित स्थानसे उठकर अपनी लक्ष्य-प्राप्तिमें लग जाये ।

'लीला' करवट बदलकर उसने कहा---'कल बहुत सुबह ही चली जाऊँगी---मैं, लीला !'

'सुबहकी सुबह देखी जायेगी। तुम सो तो जाओ, दो बज रहा है !' थोड़ी देर चुप रह कर वह बोली---'और आरती, एक बात कहूँ---किसी बुरी नीयतसे नहीं कह रही मैं---तुम्हें कहीं भी शहरके इस भागसे अधिक सुरक्षित स्थान नहीं मिल सकता---कमसे कम तुम्हारे-जैसे कामको सुविधाजनक !' लीला चुप हो गई। तभी पासके किसी मकानसे किसी पुरुषकी भद्दी हँसनेकी आवाज़ सुनाई दी---वासनामें डूबी हुई-सी जैसे शराबकी दुर्गन्धिमें शराबोर हो !

आरतीने सुना, लीलाकी बात भी सुनी---सोचा, उठकर एक ज़ोरका तमाचा इस कमीनी स्त्रीके मुखपर दे। जैसे जुगुप्सा---वीभत्स घृणाका ज्वालामुखी उसके अन्दर फट पड़ा। उसे लगा उसे 'क़ै' हो जायेगी। हाँ, वह देशके कार्यके लिए पुलिसके कुत्तोंसे सुरक्षित स्थान चाहती है, किन्तु ....! उत्तेजनासे वह बैठ गई। उसकी मचलन जैसे एकदम उफ़न पड़ी---उसे लगा जैसे वह अपनी इस मचलनपर अधिकार नहीं कर सक रही है---वह अवश होती जा रही है, कोई दानव उसके ऊपर चढ़ा चला आ रहा है। उसने अपना 'रिवॉल्वर' टटोलकर देखा, और अनजाने ही उसकी उँगलियाँ घोड़ेपर तन गई। प्रबल आवेग उसके अन्दर उठा---उठा कर मार दे एक गोली इस नीच स्त्रीको !

आवेशसे वह उठ कर खड़ी हो गई।

'क्यों ?' लीलाने सिर उठा कर पूछा।

'कुछ नहीं, बाहर काम है मुझे, अभी आई दो मिनटमें !' इच्छा न करते हुए भी उसके मुँहसे निकल गया। रुद्ध विक्षोभ वाष्पकी महान्

राशि-सा उसकी छातीमें भर गया था। वह द्वारसे निकलकर छज्जेपर आ गई !

बहुत धीरेसे लीलाने द्वारके पास जाकर देखा। आरती छज्जेपर तनी खड़ी थी। कनपटीपर उसने कोई चीज़ अड़ा रखी थी---न जाने कैसे---पलके एक अमाप भागमें---लीलाके अन्दर चमक-सी दौड़ी---वह रिवॉल्वर है। आरतीकी उगलियाँ घोड़ेपर थी !

वह चीख पड़ी....

एक....दो....

× × ×

दूसरे दिन आरती बहुत गम्भीर थी। लीला भयंकर रूपसे चुप। आरतीने बहुत दृढ़ स्वरमें लीलासे कहा---'लीला, यहाँ कोई ख़ाली कमरा मिल सकेगा ?'

'क्यों ?' आश्चर्यसे लीलाने पूछा।

'क्यों ?' आरतीने उससे आश्चर्यकी मुद्रासे प्रश्न किया। फिर वह बड़े ज़ोरसे हँस पड़ी---'मैं वेश्या बनूँगी---मज़ाक़ नहीं।'

'एं !' लीलाका मुख खुला था।

आरतीके मुखपर एक अद्‌भुत दृढ़ता थी और आँखोंमें आँसू !!

ख़ानदानी घर !

मेरी इच्छा हो रही है कि धाड़ मार-मारकर, गला फाड़-फाड़कर रो उठूँ। छाती फाड़कर इतनी ज़ोरसे चीखूँ कि यह पुराना मकान कोलाहलसे भरकर फट जाय। पर लाख प्रयत्न करनेपर भी अवरुद्ध कंठसे सिसकियाँ निकल पा रही हैं। मेरे होठ काँप-काँपकर ऐंठ जाते हैं, पर एक शब्द भी मुँहसे नहीं निकल पा रहा, जैसे किसीने मशकमें ख़ूब पानी भरकर ऊपरसे कस दिया हो—अन्दर वह पानी खौल रहा है, उबल रहा है। मुझे लगा, यदि मैं ज़ोरसे नहीं रोती तो फेफड़े फट जायेंगे, जैसे मेरी पसलियाँ तनकर तड़कने तककी सीमा तक आ पहुँची हैं। किन्तु मुखसे वही रुँधी हुई सिसकियाँ निकली चली जा रही हैं। मैं रो रही हूँ—पिघल-पिघलकर बह रही हूँ।

मेरी खुली हुई हथेलियाँ एक दूसरीके ऊपर रखी हुई हैं और उनपर उस बड़े भारी ख़ानदानी पलंगका पाया रखा हुआ है। पलंगपर सफ़ेद चादर ओढ़े बिल्कुल निश्चिंत वह खर्राटें मार रहा है, जैसे कोई नई घटना नहीं है। मैं ख़ूब ज़ोरसे कह रही हूँ—वह मेरा पति है! उफ़!

रातके इस भीषण सन्नाटेमें जैसे असह्य दर्दसे तड़प-तड़पकर मैं मरी जा रही हूँ। मुझे लग रहा है जैसे लोहेके कोल्हूमें मेरी हथेलियोंका ख़ून निचोड़ा जा रहा है। ज़मीनपर पड़ी हुई मैं बिलखनेकी कोशिश करती हूँ—पर जीभको पकड़कर जैसे कोई ऐंठ रहा है।

करोड़ों कंठोंसे करोड़ों बार दुहराये शब्द मेरे मुखपर आते हैं, "हे भगवन्, किन पापोंका दण्ड है यह! कौनसे जनमके करम अब विकराल मुँह खोलकर अपना यह बदला चुका रहे हैं—हे जगदीश्वर, उठा लो मुझे!" किन्तु मुझे लगता है, जैसे मेरे ये शब्द मेरे कलेजेके अन्तर्तमको चीरकर

खूनमें लथपथ-से बाहर आ रहे हैं। इतने शक्तिशाली, इतने आर्त्त, इतने गम्भीर शब्द अभीतक किसी कण्ठसे नहीं निकले होंगे।

आखिर आज मेरा दोष क्या था....?

घरमें उनकी बहिन 'डिक्टेटर' है। माँका सीधा नाम लेकर वह नौकरानी-की तरह दिनरात काम कराती है। बापकी हिम्मत नहीं कि एक शब्द भी अपनी बेटीके विरोधमें कह सकें। तीनों भाइयोंमेंसे कोई उसके सामने खड़ा नहीं हो सकता। उसे देखकर सबकी सिट्टी गुम हो जाती है। घरमें उसका वाक्य क़ानून है। ज़रा भी नाराज़ हो जानेपर उसका पहला काम है चूल्हेमें लोटा भर पानी झोंक देना और फिर ? फिर सारे दिन पूरे घरका उपवास—कोई माँका लाल नहीं जो उस रोते हुए चूल्हेकी राख भी साफ़ कर सके! रूठकर कोठरीमें पड़ी हुई जीजीको मना कर ही दूसरे समयका खाना सम्भव होता है।

पहली पत्नीके मर जानेके पश्चात् दूसरे ही दिन जीजी द्वारा जब दूसरे विवाहका आदेश सुनाया गया तो फिर 'उनमें' इतना साहस नहीं था कि अस्वीकृतिकी एक रेखा भी मुँहपर आने देते! और फलस्वरूप मुझे इस मकानमें आये दो ही महीने हुए हैं....और....।

और मेरी हथेलियाँ कसक उठती है। एक मार्मिक सीत्कारके साथ ढेरके ढेर आँसू मेरी आँखोंके कोरोंसे बहकर कानोंमें भर गये है। उफ़, मैं उन्हें पोंछ भी नहीं सकती! कानोंमें कैसी कुलबुलाहट वे मचा रहे हैं! अविराम जैसे कोई मेरे अन्दर दुहराता है—आखिर मेरा दोष क्या है? —अपराध क्या है?

एक महीना होने आया, जीजी (ननद) बड़ी जिठानीसे रूठी हुई हैं। बोलना बहुत दूरकी बात है, जिस जगह वे बैठी हों उस रास्तेसे निकलना भी पाप है। रूखी रोटी उन बेचारीको खानेको दी जाती है—बासी! केवल एक धोती उनके पास है। घरमें किसीकी इतनी हिम्मत भी नहीं है कि उन्हें एक रूमाल दे सके! बीस आदमियोंके इस कुटुम्बमें सब

रोटी उन्हें ही करनी पड़ती है---दोनों समयकी। और अपराध केवल यह था कि बेचारी सुबहसे दो बजेतक भूखी नहीं रह सकी---दो आनेकी उन्होंने जलेबी मँगा ली थी। जलेबी फेंककर उनकी पीठपर दाँत भींचकर जो घूँसा पड़ा था, उसे उनकी रीढ़की हड्डी न जाने कितने दिन याद रखेगी ! हमारे घरका नियम है कि सुबह जबतक सब पुरुष न खा लें, स्त्री एक कौर भी मुँहमें नहीं दे सकती; और पुरुष हैं कि कोई एक बजे आता है, कोई ढाई बजे। चूल्हेके सामने बैठे-बैठे कैसी भूखकी आग पेटमें लहका करती है, इसे हम ही जानती हैं---रातको---एक बज जाता है। लेकिन मुँहसे एक शब्द नहीं निकाल सकतीं---बड़े घरकी बहुएँ हैं न !

कभी-कभी जब जीजी गर्वसे कहा करती हैं---"इस घरमें बीरबल रहा करते थे, हमारे पुरखोंको यह मकान शाहजहाँने इनाममें दिया था !" तो मैं इस मिथ्या दम्भपर दाँत पीसकर रह जाती। मेरे बाप भी कैसे अन्धे थे कि इस दम्भपर रीझ गये---कैसी ख़ानदानी जगह मुझे ब्याहा है ! इच्छा होती है, काश ! गलेमें ढोल बाँधकर मैं ढिंढोरा पीट सकती कि ये बड़े घरकी बातें हैं। उन चमचमाती ऊँची दीवारोंके पीछे कैसा नाच होता है, कैसा नरमेध होता है---उफ़ !

पीड़ासे मेरी नसें तनकर सुन्न हुई जा रही हैं---निश्चेतन विवशताकी अनुभूति अपनी समस्त कटुतासे मेरी नस-नसका रक्त जमाये दे रही है। क्या मैं यों ही मर जाऊँगी, क्या मेरे प्राण ये लोग यों ही धीरे-धीरे ले लेंगे ?

प्राण ?---हाँ प्राणोंका इनके लिए क्या मूल्य है ! प्राण इनके लिए खेल है, क्योंकि हम पैरोंकी जूतियाँ हैं। और इनकी पहली पत्नीके विषयमें सुनती हूँ तो सारे शरीरपर बड़े-बड़े रोंगटे खड़े हो जाते हैं। वह जीजी जब कभी हमारे ऊपर आतंक जमानेको कहती है---"जो कोई मेरे ख़िलाफ़ जाता है उसकी ख़ैर नहीं है।" और फिर वे कैसी रस ले-लेकर पहली बहूके विषयमें बताती हैं कि कैसे उसके हाथ-पाँव बाँधकर उसके ऊपर मार पड़ी थी---मोटे-मोटे रस्सोंसे ! और जब पिटते-पिटते बेचारी

बेहोश हो गई तो डोल भरकर उसके ऊपर पानी डाला गया था, तनिक कराही, उसे चेत हुआ तो फिर वही क्रम ! और इस प्रकार तीन घंटेकी मारमें ही उस बेचारी गर्भवतीने प्राण छोड़ दिये थे। तुम विश्वास नहीं करोगे, पर मैं तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ कि इसमें तनिक भी झूठ नहीं है—यह सब होता है, आज इस बीसवीं शताब्दीमें यह सब बातें होती हैं। उसकी सूरत देखते ही मेरे प्राण सूख जाते हैं ! और उसका अपराध यह था कि घरसे उसका भाई आया हुआ था, पुरुषोंके कमरेकी ओर ठहरा था ! पहले उसने जिठानीकी छोटी बच्चीसे पुछवा लिया—कमरेमें केवल उसका भाई है। वह बात करने चली गई—बस ! बड़े घरकी बहुयें पुरुषोंके कमरेमें चली जायें ? इससे बड़ा पाप शायद इस ख़ानदानी घरमें कभी नहीं हुआ। फिर डाँट पड़नेपर उसने जब यह कह दिया—"वहाँ और था ही कौन—भैया थे बस !" बस तभी तो ग़ज़ब हो गया। ज़बानदराज़ी करती है। बेशर्म ! वहाँ अपने ख़समसे बातें करने पहुँची थी अकेलेमें ! जब भी उस बेचारीकी तड़फड़ाती अवस्थाकी मुझे याद आती है तो मेरे हृदयकी धड़कन रुक जाती है। सारे शरीरमें जैसे शीतकी एक तीव्र लहर मन-प्राणको जड़-निस्पन्द करती चली जाती है। किन राक्षसोंके बीचमें फँस गई हूँ—भगवन् ! मैं जानती हूँ, मै बच नहीं सकती। किसी अपराधपर बोलना ज़बानदराज़ी है और चुप रहना मानो किसी बातकी स्वीकृति !

मेरे साथ इन लोगोंने क्या नहीं किया है ?—रातदिन इसे—मेरे पतिको—जीजी बैठाकर भरती ही रहती है, तब यह मेरी ओर कैसी ख़ूनी आँखोंसे देखा करता है !

आह ! मेरे हाथ बिल्कुल निष्प्राण हो गये हैं। ठीकसे मैं लेट भी तो नहीं पाती। ये सब क्यों हो रहा है ? मैंने इनका क्या बिगाड़ा है ? क्यों ये सब लोग मुझे तिल-तिलकर मार रहे हैं ?—क्यों वह मेरे ख़िलाफ़ रातदिन भरती रहती हैं ? अपने इसी स्वभावके कारण तो विधवा

होकर यहाँ पड़ी है और तब भी तो नहीं चेतती। आख़िर मैंने इनका छीन क्या लिया है, क्यों सबके सामने मुझे बदनाम करनेपर तुली रहती है ! सिर्फ़ यही धोती मेरे पास है, इसीको आधा धो लेती हूँ—आधा सुखा देती हूँ, आधी पहिनती हूँ—सिर्फ़ इसलिए कि मैंने पत्र बिना पूछे डाल दिया अपने घर ? इसीलिए यह अपमान—प्रताड़ना ? कोई मिलने आता है तो वह कम्बख़्त खूँटियोंपर कपड़े टाँग देती है और उससे कहती है—"घरमें कपड़े तो निरे टँगे हैं, बहू ही फूहड़िया है, पहिनना ही नहीं जानती।" उस समय मेरे अन्दर कैसे तूफ़ान मचलकर रह जाते हैं—कैसे इसकी मक्कारी और चालाकीसे भरी आँखें बाहर निकाल लूँ ! उस दिन खाना खाते समय,—पास ही सुराहीमें पानी रखा था—माँगा, "पानी दो।" मेरे हाथ चूल्हा पोतनेके हो रहे थे, कह दिया 'जीजी ज़रा उडेल लो,' बस इसीपर भरी सुराही मेरे सिरपर उठाकर मारी,—इतने ज़ोरसे कि आज भी सिर छूनेसे दर्द होता है—बाल नहीं काढ़ती। और रातको जब दूध लेकर गई, तो इस अन्धेने इतने जोरसे ठोकर मारी थी कि मैं दस सीढ़ियोंसे लुढ़कती हुई औंधी-सीधी गिरी—रातभर रोती रही, पर कोई सुननेवाला नहीं था।

और आज मैं पूछती हूँ मेरा क्या दोष था ? पंजाबके दंगोंमें अपना सब कुछ लुटाकर आई हुई एक स्त्रीसे बात कर रही थी, बेचारीकी व्यथा सुनकर आँखोंमें आँसू आ गये—बस ऊपरसे आवाज़ें पड़ीं, 'क्या कर रही है, उस रंडीके साथ भागेगी, निकल जा उसके साथ भीख माँगने !' क्या-क्या कथनीय और अकथनीय नहीं कहा गया। मैंने धीमेसे जिठानीसे कहा—"जीजीमें दया नहीं है।" सुन लिया तो फिर फ़ौरन ही रोने लगी, पहुँची, भैयाके पास ! और यह भैया ?—कमरेमें आई तो बोला—"हाथ रख यहाँ, रख, रखती है या नहीं ! क्या कह रहा हूँ, सुन रही है ?" और मेरे दोनों हाथोंपर इस ख़ानदानी भारी पलंगका पाया रखकर सो गया। रोते-रोते मैं बेदम हो गई हूँ। बाहर

सूनी रात सायँ-सायँ कर रही है, कभी-कभी चौकीदारकी आवाज़ सुनाई दे जाती है।

मेरे अंग-अंगमें दर्द होता है, मेरे जोड़-जोड़में कराहें भरी हैं, आज दो महीने हो गये, कोई दो शब्द प्रेमसे बोलनेवाला नहीं है! गाली खाओ, पिटो, भूखे रहो, पर चुप रहो—यही इस बड़े घरका क़ायदा है, बड़े घरकी इज़्ज़त है! हमारे गलोंको भींचकर ये लोग दम्भसे कहते हैं—हम इस उच्च वंश-परम्पराके अग्रदूत हैं। तुम्हारे घरमें क्यों नहीं, सारे देशमें आज यही हो रहा है!

और अगर मै आज भाग जाती हूँ तो? कहाँ रह जायेंगी इनकी इज़्ज़त-नाक? यह वीरबलका मकान? शाहजहाँ द्वारा दिया इनाममें मिला यह सब सम्मान? लेकिन....लेकिन मैं भाग नहीं सकती। मैं जानती हूँ मेरी बोटी-बोटी काट ली जायेगी, मेरी चमड़ी इंच-इंच भर उधेड़ ली जायेगी। ये क़साई मुझे काट डालेंगे! मैं यों ही मर जाऊँगी, हाय! यों ही अनजान, भैया भाभी आज सब समझेंगे न जाने कैसे मर गई, किसीको मालूम भी न होगा।

मेरे हाथोंमें फिर चींटियाँ-सी चल रही हैं, और फिर पीड़ा हो रही है। मेरी नस-नस जैसे गरम सण्डासीसे पकड़कर खींची जा रही है। उफ़, नसें फूल-फूलकर कैसी नीली-नीली निकल आई हैं? कोई नहीं बचायेगा, मुझे कोई नहीं बचायेगा! मैं यों ही मरूँगी—यों ही। औरोंकी सासें तंग करती हैं, ननद तंग करती हैं, तो उन्हें एक सहारा रहता है, उन्हें एक आधार रहता है, एक जगह रहती है, जहाँ वे अपना सुख-दुख कह सकती हैं, सान्त्वना पा सकती हैं, प्यार कर सकती हैं! पर, पर यहाँ तो यह मूर्ख मिट्टीका पुतला—मैं इसका आदर नहीं कर सकती, इससे प्रेम नहीं कर सकती! यह कायर नपुंसक! तो क्या मैं यों ही मर जाऊँगी—मुझे कोई भी नहीं बचा पायेगा? आह! कोई सुनो, केवल एक क्षणको सुन लो। यह काली छाया-सी क्या आ रही है, मुझे डर लगता है, मैं

बिलख-बिलखकर कहती हूँ, मुझसे यहाँ नहीं रहा जायेगा—मैं मरना नहीं चाहती, अभी मेरी उम्र ही क्या है ?—केवल सोलह वर्षकी ! सच कह रही हूँ मैं मरना नहीं चाहती, मुझे संसारमें देखने दो, मुझे जीने दो !

लेकिन यहाँ कोई नहीं जीने देगा—कोई मुझे सुखकी साँस नहीं लेने देगा—यहाँ सब क़साई हैं, सब हत्यारे हैं ! मेरे मुँहसे भर्राईसी चीख़ निकलती है—"अम्मा" अम्मा क्या तुम सुन रही हो ! नहीं, तुम नहीं सुन सकती माँ ! चीख़ सुनकर वह करवट बदलकर फिर चादर तानकर सो गया है ! पहलीकी तरह यह मुझे भी मार देगा, इसका कुछ ठीक नहीं है।

तो मैं यों ही मुँह बन्द किये हुए मर जाऊँ ? यहाँसे भाग जाऊँ ? तो कहीं डूब जाऊँ ? कुएँमें गिर जाऊँ ? दूर भाग जाऊँ, जहाँ किसीको पता भी न लगे—कोई जान भी नहीं पायेगा, ये दुष्ट वहाँ पहुँच भी नहीं पायेंगे। लेकिन क्या करूँगी ? पढ़ी-लिखी मैं हूँ नहीं !

और मेरे अन्दर एक आवेश-सा उठा है, एक तीव्र झटका-सा मुझे अपने अन्दर अनुभव होता है, जैसे मेरे अन्दर कोई कड़कती बिजली-सी तड़पड़ाती है ! मैं यहाँ नहीं रहूँगी, नहीं रहूँगी ! देखें मुझे कौन रोकता है ? मैं एकदम तनकर बैठ जाती हूँ, घुटनोंके बल बैठकर ज़ोरके झटकेसे दोनों हाथ बाहर खींच लेती हूँ, मेरी हथेलियोंका पृष्ठ भाग पृथ्वीसे छिल गया है—उनमेंसे ख़ून टपकने लगा है, लेकिन मुझे चिन्ता नहीं है, डर नहीं है मुझे भाग जाने दो—दूर....दूर इस रौरवसे दूर !

मैं दौड़कर किवाड़ खोलती हूँ—बाहर भी भीषण अन्धकार है, एकदम काली दीवार-सी खड़ी है सामने ! किवाड़ खोलते ही मुझे दिखाई देता है, सामने काले क्षितिजपर आगकी प्रतिक्षण बढ़ती लपलपाती लपटोंसे बना एक प्रश्नवाचक चिह्न भीषण दैत्य-सा खड़ा है, अन्धकारमें चमक

रहा है। कितना बड़ा—पृथ्वीसे लेकर आकाशमें दूर तक ऊँचा, सारा क्षितिज उससे ढँक गया है। मैं स्तब्ध खड़ी रह गई हूँ! भयसे मेरी आँखें और मुँह खुलेके खुले रह गये हैं—लेकिन अब ? लेकिन अब ? आत्महत्या ? कुआँ ? चौका-बर्तन ? वेश्यावृत्ति ?—क्या ?

पीछेका द्वार बन्द हो गया है। और मैं उस भयंकर धधकते प्रश्नवाचक अग्निकुण्डमें कूद पड़ती हूँ—मुझे भागना है दूर—इस नरक-से दूर !

मेरे आगे वह प्रश्नवाचक चिह्न पीछे भागता है—लेकिन अब ? लेकिन अब—?